

12/89



Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji
Maharaj





मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
शेका में संलग्न मासिक पत्र ।



सम्पादक :

डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 16

सोमवार, 11 दिसम्बर 1989

संख्या 8



आहार और उसका शरीर पर प्रभाव

पूर्णधनी हजूर दाता दयाल जी महाराज

जो मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसकी बद्धि तथा मन भी वैसे बनते हैं, क्योंकि इनकी बनावट में आहार का बहुत बड़ा अंश रहता है। हिन्दुओं में प्राचीन समय से ही आहार पर बहुत विचार होता आया है। जो भोजन अधिक लाभदायक पाया गया, उसीके सेवन के लिए विशेष ध्यान दिलाया गया। बुरे आहार का दोष बतला कर, उससे बचने के लिए सावधान किया गया। जो लोग मन्दे आहार को छोड़ नहीं सकते थे, उन पर सख्ती तो नहीं की गई, हाँ ! उन्हें और लोगों की बस्ती से अलग रहने को आज्ञा दी गई, जिससे उनके बुरे प्रभाव और संस्कार से सब लोग बचे रहें। आहार की जाँच-पड़ताल का काम धार्मिक मनुष्यों के जत्थे ने विशेष रूप से किया। चरक शास्त्र जो हिन्दुओं के आयुर्वेद का सबसे पुराना ग्रन्थ है, उसमें खाने की प्रत्येक वस्तु का गुण व दोष बतला कर विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है। इसमें लगभग उन सब वस्तुओं का वर्णन है, जिसे पुराने समय में खाते-पीते थे। सूश्रुत और बाग्भट ने भी इस विषय में बहुत कुछ लिखा है, परन्तु चरक शास्त्र की तरह पूर्ण निर्णय इनमें नहीं पाया जाता।

यदि हम वैद्यक के ग्रन्थों को छोड़ दें और केवल मुख्य-मुख्य धार्मिक पुस्तकों को ही हाथ में लें, तो उनमें भी कुछ



संक्षेप के साथ इसका विवरण पाया जाता है। यहाँ तक कि उपनिषद् जैसे ज्ञानकाण्ड के ग्रन्थ भी इससे खाली नहीं हैं। वृहदारण्यक उपनिषद् में जहाँ इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न करने का विवरण है, वहाँ भी विशेष प्रकार के आहार के सेवन करने की आज्ञा है। बौद्धों तथा जैनियों ने तो बाल की खाल निकालते हुए खाने-पीने की प्रत्येक वस्तु की व्याख्या कर दी है। इससे वैद्यों ने भी बहुत लाभ उठाया। रोगियों और बीमारों के खाने-पीने के सामान, जो आजकल बरते जाते हैं, वे प्रायः वही हैं, जिन्हें अनुभवी भिक्षुओं ने बतलाया था। वैष्णवों ने उनका अनुकरण किया। हमारा तो विश्वास है कि आजकल वैष्णव धर्म के खानपान में, जो वस्तुएँ बरती जाती हैं, वे सब इन बौद्धों तथा जैनियों के कथनानुसार हैं।

आहार से न ही केवल मन और बुद्धि की बनावट होती है बल्कि सारा शरीर ही इससे बनता है। आहार का प्रभाव मनुष्य के विचार, भाव और संस्कार पर भी पड़ता है। मनुष्य का स्वभाव जानने के लिए उसके नित्य के आहार को देखो, इससे आपको पता चल जायेगा कि वह कैसा है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी आहार के विषय में विस्तार-पूर्वक व्याख्या दी गई है। यदि सब बातों को छोड़कर गीता की इस व्याख्या पर ध्यान दिया जाये, तो यह व्याख्या हमारे लिए बहुत ही उपयोगी और लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

धार्मिक आचार्यों के मत के अनुसार आहार तीन प्रकार का होता है :—

- 1) सात्त्विक,
- 2) राजसिक,
- 3) तामसिक।



इन तीनों आहारों के गुण भिन्न-२ हैं। सत सूक्ष्म होता है, तम स्थूल और रज में सूक्ष्म और स्थूल, दोनों का मेल होता है। अब इनकी संक्षेप में व्याख्या करना लाभदायक होगा।

सात्त्विक या सतोगुणी आहार

चावल, दूध, घी, मक्खन, दाल (सब दालें नहीं) गेहूँ, जौ, मूँग, मोठ, फल, मेवा, थोड़ी देर में पचने वाली तरकारियाँ, मीठी और खटमीठी वस्तुएँ जो चरपरी न हों।

सात्त्विक या सतोगुणी आहार करने का फल यह होता है कि मनुष्य बलवान, दयावान, वीर्यवान, विचारवान, बुद्धिमान, न्यायप्रिय तथा शान्तचित्त होता हुआ शारीरिक और मानसिक दृष्टि से आरोग्य रहता है। वह क्रोध से बचा रहता है और उसमें प्रेम उमड़ता है। उसे धर्म के तत्त्व तथा गूढ़ रहस्यों की समझ होती है। पक्षपात तथा वद्वरण से बचकर सात्त्विक आहार लेने वाला व्यक्ति विवेक के साथ सोचने-विचारने के योग्य होता है।

राजसिक या रजोगुणी आहार

उद, चना, अरहर, बाजरा, ज्वार, आलू, मूली, गाजर, अरबी, पक्का आम, इमली, मधु, दही, मांस, मदिरा (शराब) मिर्च, लौंग, प्याज, बहुत गर्म दूध, कड़वी खारी और बहुत गर्म तथा खरबी वस्तुएँ इत्यादि।

इसके सेवन का फल :—

काम अंग उत्तेजित होता है, वीर्य के पतले और कम गाढ़ होने के कारण स्वप्नदोष हो जाता है। मन तथा बुद्धि में अकलता जाती है। चित्त चंचल रहता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, पक्षपात, हठधर्मी इत्यादि बढ़ जाते हैं। दया, क्षमा और न्याय का अभाव हो जाता है। द्विचिताई



के काष्ण मन में शान्ति नहीं रहती। लड़ना-झगड़ना, मत-मनान्तर के लिए वाद-विवाद करना मनुष्य का स्वभाव हो जाना है। धर्म का पालन करना कठिन हो जाता है। ऐसे आहार करने वालों की आयु लम्बी नहीं होती। जो इनकी हँ में हँ नहीं मिलाये उसे ऐसे व्यक्ति मूर्ख समझते हैं।

तामसिक या तमोगुणी आहार

हर तरह का बासी खाना, सड़ी-गली तरकारी, तेल, जूठा खाना, खट्टा दही, सड़ा हुआ अनाज, फल तथा मेवा। सड़ी हुई मछली, सड़ा मांस, भाँग, बिगड़ा हुआ दूध, मैला पानी, कई दिनों का बन्द रखा हुआ खाना, मटर, महुआ, चना, मकई, सावाँ, कोदों, टांगुम और हर तरह का देर से पचने वाला अनाज।

इनके सेवन का फल :—

रुधिर (खून) बिगड़ता है। आँते खराब होती हैं। सूक्ष्म इन्द्रियों में दोष आ जाता है। सिर में चक्कर आते हैं और पीड़ा होती है। आये दिन सरदी से नाक बहती रहती है यानि कि नजला रहता है। मन मलिन, बुद्धि मलिन तथा शरीर मलिन रहता है। ऐसे तामसिक आहार का सेवन करने वालों की आयु कम होती है। यदि कम न भी हुई तो भी ऐसा व्यक्ति मूढ़ता और पशुवत् भाव के साथ जीता है। आलस्य, निद्रा, अपाहिजपना ऐसे व्यक्तियों का स्वभाव हो जाता है। ऐसे व्यक्ति आज का काम कल पर टालते रहते हैं। उन्हें लज्जा तथा अपमान का ध्यान नहीं रहता, वे काम, क्रोध में लम्पट होकर, अपने आपको लगातार नीचे गिराते रहते हैं।

यह तो तीनों प्रकार के आहार की संक्षेप व्याख्या है। अब हमें धार्मिक दृष्टि से देखना है कि इन तीनों गुणों में



से कौन गुण वाला मनुष्य धार्मिक शिक्षा का अधिकारी है।

जो सतोगुणी अथवा जिस व्यक्ति में सतोगुण की प्रधानता है वह ही उत्तम अधिकारी माना गया है, क्योंकि यदि ऐसे व्यक्ति की बुद्धि पर अज्ञान का पर्दा पड़ भी जाये तो वह सत्संग में जाकर उसके प्रभाव से शीघ्र ही सात्त्विक रंग ग्रहण कर लेगा और ज्ञान-ध्यान की बातों को जल्द समझ लेगा। उसके लिए सत्संग बहुत ही लाभदायक सिद्ध होता है, क्योंकि वह ज्ञान का अधिकार रखता है।

रजोगुणी या रजोगुण की प्रधानता वाला व्यक्ति मध्यम प्रकार का अधिकारी बन सकता है। ऐसे व्यक्ति में अज्ञान तथा चंचलपने के दो अवगुण प्रधान हैं। वह सत्संग में जाकर भी शान्ति के साथ चुपचाप नहीं बैठ सकता। जब तक ऐसा व्यक्ति धीरे-२ सात्त्विक आहार के सेवन करने की आदत नहीं डालेगा, उसे अधिक लाभ नहीं होगा। वह उत्तम प्रकार का अधिकारी नहीं बन सकेगा। स्वाध्याय के साथ-२ यदि वह साधन भी करे तथा अपने आपको सत्संग सुनने के योग्य बनाये, तो वह धीरे-२ भक्ति का अधिकारी हो सकता है तथा ज्ञान का भी।

तमोगुणी या तमोगुण की प्रधानता वाला व्यक्ति कनिष्ठ अधिकारी हो सकता है और वह भी बड़ी कठिनाई के साथ, क्योंकि ऐसे व्यक्ति में तीन दोष होते हैं। 1) मूढ़ता, 2) चंचलपना तथा 3) अज्ञान। ऐसा व्यक्ति सत्संग का तो किसी भी दशा में अधिकारी नहीं है। यह सत्संग में पहिले तो जायेगा नहीं, यदि जायेगा भी तो वहाँ से जायेगा, खरटि भरने लगेगा। ज्ञान की बातें तो ऐसे व्यक्ति की समझ में भी नहीं आ सकतीं, क्योंकि उसका मन अधिकार में न होने



(7)

के कारण टिका हुआ नहीं होता। ऐसे व्यक्ति का सत्संग में जाना भी बेकार है। ऐसे व्यक्ति को धीरे-धीरे स्वाध्याय के साथ मन को टिकाने के लिए साधन करना चाहिए। उसमें भी जरूरी है कि वह धीरे-2 अपने आहार को सात्विक बनाये यानि कि सात्विक आहार का सेवन करे। जब वह इसमें सफल होने लगेगा, तब कहीं उसका सत्संग में जाना उसके लिए लाभदायक होगा। इसके पश्चात् ही वह कर्म, ज्ञान तथा भक्ति का अधिकारी हो सकता है।





सदा यह सोचो कि जो कृछ हो रहा है अच्छा हो रहा है

सत्संग परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर, 7-12-1975

राधास्वामी !

दोस्तो ! मैं बचपन में ही ईश्वर या परमात्मा को मिलने निकला था। इस खोज में, मौज मुझको हज़र दाता दयाल जी महाराज के चरण-कमलों में ले गई। उन्होंने मुझे सन्तमत वा राधास्वामी मत दिया। मुझे यह जानने का जनून था कि ईश्वर और मालिक का रूप क्या है ? वह रहता कहाँ है ? जिस शक्ति ने इस संसार को बनाया है, वह है क्या ? इस बात का ज्ञान मुझे बहुत वर्षों के बाद, आपके सम्पर्क में आने से हुआ। जब अपने विश्वास से लोग मेरा रूप बना कर, नाना प्रकार के काम करवा लेते हैं, बच्चे मेरे रूप से, अपने परीक्षा में पर्चे हल करवा लेते हैं, जबकि मैं कहीं होता नहीं और न ही मुझे इस बात का कोई ज्ञान होता है, तो मुझे पक्का विश्वास हो गया कि आदमी के मन में एक जबरदस्त शक्ति है। जब लोग राम या कृष्ण या किसी अन्य देवी-देवता की मूर्ति बना कर, उससे काम ले लेते हैं, तो इससे सिद्ध होता है कि संसार को बनाने वाला भी कोई आदमी है। जब वह आदमी है, तो उसका शरीर भी होना चाहिए, मन भी होना चाहिए और रूह भी होनी चाहिए।



क्योंकि जब तक मन और रूह नहीं होते, तो व्यक्तित्व संकल्प नहीं कर सकता।

प्रश्न उठता है सबसे पहिले आदमी को बनाया किसने ? शास्त्र कहते हैं कि उस महान् पुरुष ने यह सृष्टि बनाई। मगर इससे उसको तसल्ली नहीं हुई। फिर उसने अपने संकल्प से मन या आदमी बनाया और उस आदमी ने अपने संकल्प से स्त्री बनाई। पिछले ज़माने में स्त्री-पुरुष मैथुन से बच्चा पैदा नहीं करते थे, बल्कि उनके विचार से ही बच्चे की उत्पत्ति हो जाती थी। मैं इस बात को मानता हूँ। क्यों? क्योंकि जब लोग मेरे रूप को बना कर, उससे काम ले लेते हैं, तो यह सम्भव है कि उस कर्त्तापुरुष ने भी, अपने विचार या संकल्प से आदमी को बना दिया और उस आदमी ने अपने विचार से स्त्री बनाई। जब तक मनुष्य के मन में ज़बरदस्त शक्ति थी तो बच्चों के लिए मैथुन की ज़रूरत नहीं थी, परन्तु जब मनुष्य का मन निर्बल हो गया तो फिर भोग का सिलसिला आरम्भ हो गया। आज भी मोर और मोरनी बिना मैथुन के बच्चा पैदा करते हैं। मोर जब मस्त होकर नाचता है, तो उसकी आँखों से आँसू गिरते हैं। मोरनी पानी की शक्ल में वह आँसू पी जाती है और उससे वह अण्डे देने लगती है।

अमेरिका में कई ऐसे केस (घटनाएँ) हुई हैं, जिनमें कुँआरी लड़कियों ने यह बताया कि उन्होंने किसी भी पुरुष से सम्भोग नहीं किया, परन्तु फिर भी वे गर्भवती हो गईं। हज़रत ईसा मसीह का जन्म भी एक कुँआरी लड़की से बगैर किसी सम्भोग से हुआ था। हनुमान जी का जन्म भी ऐसे ही हुआ।

इस सृष्टि को पैदा करने वाले का शरीर विराट् है,



मन अव्याकृत है और रूह हिरण्यगर्भ है। सृष्टि के पैदा करने वाले को, कोई कर्त्तापुरुष कहता है, कोई कुछ और कोई कुछ। आप इनको अपने मन का सोहं पुरुष समझ लो, या संसार का सोहं समझ लो इस संसार में ही क्या रहा है? एक जानवर दूसरे को खा रहा है। बड़ी मछली छोटी मछली को खा रही है। जहरोली दवाइयाँ छिड़क-२ के लाखों नहीं बल्कि करोड़ों जीव-जन्तुओं को मार दिया जाता है। चूहों को मारने के लिए तरह-२ की दवाइयों का प्रयोग किया जाता है। कितना जुल्म है, कितना अत्याचार होता है! यह संसार है क्या और इस संसार को बनाने वाला इतना जालिम क्यों है? संसार में एक दिन भी ऐसा नहीं बीतता जब कहीं न कहीं लड़ाई नहीं होती हो। बंगला देश में क्या हो रहा है? योरुप के देशों में क्या हो रहा है? एशिया के देशों में क्या हो रहा है? दंगे, फ़साद और लड़ाइयाँ ही न। सोचता हूँ, ऐसे सृष्टि रचने वाले ईश्वर को क्यों पूजूं, जिसके पास सिवाय जुल्म के और कुछ है ही नहीं। हम रोते भी हैं, दुःखी भी होते हैं और बचना भी चाहते हैं। हम उसी जालिम कर्त्तापुरुष के गुलाम बने हुए हैं और उसी के आगे अपने मत्थे रगड़ते रहते हैं। क्यों? जिस आदमी को इस संसार की शोचनीय दशा देखकर, और दुःखों से तंग आकर वैराग्य हो जाता है, वह इस संसार से निकलना चाहता है और वहाँ पहुँचना चाहता है, जहाँ न सुख है न दुःख। तुम लाख ईश्वर या परमात्मा को पूजो, लाख मन्दिरों में जाओ तुम इस संसार में रहते हुए सुख-दुःख से बच नहीं सकते। कोई भी नहीं बच सकता। भक्तों के साथ क्या बीतो? सन्तों ने कैसे-२ दुःख झेले? इतिहास इसका गवाह है।

मैं मालिक की तलाश करने निकला था। सोचता हूँ कि मैंने क्या कुकर्म किया, जो मुझे इस संसार में आना



पड़ा। सन्तमत की शिक्षा के केवल वही अधिकारी हैं, जिनको इस संसार से वैराग्य हो गया हो। कर्त्तापुरुष है क्या और उसको किसने बनाया है? कर्त्तापुरुष प्रकाश है, नूर है, या रौशनी है। यह हमारे अन्तर में भी है और हमारे बाहर ब्रह्माण्ड में भी इसका केन्द्र है। आप एक दीये को जलाओ, जब दीया जलता है, तो उसकी लाट के ऊपर का भाग काला होता है, बीच का भाग लाल तथा नीचे का भाग सफेद। दीये के ऊपर का जो भाग काला होता है, वह धुँआँ होता है। ऐसे ही प्रकाश के ऊपर के भाग से जो धुँआँ निकलता है वह स्थूल पदार्थ बन जाता है और जब उप प्रकाश की किरण स्थूल शरीर में आती है, तो मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार पैदा हो जाते हैं। जब तक कोई आदमी उस कर्त्तापुरुष की पकड़ से बाहर नहीं जायेगा, वह सुख-दुःख और जन्म-मरण से बाहर नहीं जा सकता। आकाश तत्त्व से अग्नि तत्त्व बनता है, अग्नि से वायु, वायु से पानी तथा पानी से मिट्टी बन जाती है। जिस प्रकार आकाश तत्त्व सूक्ष्म होता हुआ स्थूल बन जाता है ऐसे ही सोहं पुरुष के केन्द्र से, जो-किरणें (Radiations) निकलती हैं, वही किरणें स्थूल बन कर पृथ्वी बन जाती हैं। जिस प्रकार हमारे अन्तर में लाखों, करोड़ों कीटाणु पैदा हो जाते हैं, ऐसे ही इस ब्रह्माण्ड में भी लाखों, करोड़ों जीव पैदा हो जाते हैं। जिस प्रकार हमारे अन्तर में लाखों, करोड़ों कीटाणुओं में से जो एक कीटाणु की हैसियत होती है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में एक आदमी की वही हैसियत है। सृष्टि के रचना करने वाले को, सन्तों ने सोहं पुरुष या काल कहा है। उस कर्त्तापुरुष ने मनुष्य को अपने ही जैसा बनाया। जो गुण उसमें हैं, वही मनुष्य में हैं। हम मनुष्य अपनी खुशी के लिए ही बच्चे पैदा करते हैं, लेकिन हम यह



कभी नहीं सोचते कि आगे चलकर इन बेचारों के साथ क्या बीतेगी। क्या इनको टी. बी. होगा या कैंसर। इसलिये सन्तों के माग में संसार को पैदा करने वाचा निर्दयी ही है।

जैसे सोड़ा और निम्बू का सन मिलाने से शू-शू होने लग जाती है, या दो चीजों को मिलाने से तीसरी चीज पैदा हो जाती है, ऐसे ही नेगेटिव और पाज़िटिव के मिलने से हमारे मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार पैदा हो जाते हैं। हमारा जीवन बना, लेकिन वह अधूरा रह गया। कैसे ? जैसे एक आदमी बीमार है। उसकी नब्ज चलती है, दिल की गति हो रही है, सांस भी आती है। वह जागृत है, मगर बोल नहीं सकता। वह बेहोश है। उस सोहं पुरुष ने जब यह देखा कि उसकी रचना अधूरी है, तो उसने सर्वाधार की अंश सुरत की उत्पत्ति की। यह सुरत या शक्ति वहाँ से आई, जहाँ से वह सोहं पुरुष बना। स्वामी जी महाराज अपनी वाणी में सुरतसंवाद में लिखते हैं :—

अब सुरत पूछे स्वामो से, भेद कहो अपना तुम मो से।

वास तुम्हारा कौन लोक में, हो आए तुम कौन मौज में ॥

सतपुरुष समय का सद्गुरु कहा जाता है। वह मानव के चाले में वहाँ से आता है, जहाँ काल की रचना नहीं है :—

देश तुम्हारा कौन लोक में। खोजे सुरत न पावे नूर।

मैं खोजी था। मालिक को मिलना चाहता था। मुझे पता नहीं लगता था इसलिये तड़पता था।

मैं बिछड़ी तुम से कहो कैसे। देश पराये आई जैसे ॥

यह देश हमारा नहीं है। यहाँ कोई दस साल के लिए, कोई बीस साल के लिए, कोई पचास साल और कोई सौ साल के लिए आता है। कहाँ गये बड़े-२ बुद्धिमान, विज्ञानी, राजे, महाराजे और सन्त ? हम यहाँ आये हैं और इस बात



को समझते भी हैं कि हमें एक दिन यहाँ से चले जाना है, लेकिन फिर भी हमको होश नहीं आती और बजाय यहाँ से निकलने के दिन-प्रतिदिन और फँसते जा रहे हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि हम काल के भारी चक्कर में फँसे हुए हैं :-

मेरा हाल भिन्न कर गाओ। देश अपना मुझे लखाओ ॥

यह सुरत पूछती है, "मैं कौन हूँ और कहाँ से आई हूँ?"

तब हंस शब्द सुवाणी बोले। सुनो सुरत तुम मैं कहूँ खोले ॥

जो तू पूछे भेद हमारा। कहूँ सभी अब कर विस्तार ॥

मैं हूँ अगम अनाम अमाया। रहूँ मौज में उधर समाया ॥

सन्त दो प्रकार के होते हैं, एक तो स्वतः सन्त होते हैं जैसे कबीर और राधास्वामी दयाल और एक यहाँ आकर सन्त बनते हैं। मैं स्वतः सन्त नहीं हूँ। यहाँ आकर सन्त बनने का यत्न कर रहा हूँ, यद्यपि अभी तक शत-प्रतिशत स त बन नहीं सका। सन्त यह भेद खोलते हैं कि मनुष्य की ज्ञात क्या है और कहाँ है। ज्ञात में ब्रह्मा, विष्णु और महेश या देवी-देवता नहीं हैं। जो हमारा असली घर है, वह तो बहुत दूर है। कबीर साहिब कहते हैं :-

दूर गवन तेरो हंसा हो। घर अगम अपाच ॥

नहीं वहाँ काया नहीं वहाँ माया। नहीं वहाँ त्रिगुण पसारा ॥

चार बरन उहवां है नाहीं। ना है कुल व्योहार ॥

नौ छः चौदह विद्या नाहीं। नाहीं वहाँ वेद विचार ॥

जप तप संजम तीरथ नाहीं। नाहीं नेम आचार ॥

पाँच तत्त्व नाहीं उत्पत्ति भइलें। सो परलय के पार ॥

तीन देव ना तेतिस कोटी। नाहीं दसों अवतार ॥

सोचह संब के भागे होई। समरब कर दरबार ॥

सेत सिंघासन आसन बैठे। जहाँ सबद इनकार ॥

वह है हमारा आद घर। मैंने सन्तों की वाणी पढ़ी,



जो सनातन धर्म के साथ मेल नहीं खानी थी और मेरे विचार पक्के सनातनधर्मी थे। अतः मैंने प्रण किया था कि मैं सन्नमत पर सच्चा होकर चलूंगा और जो मेरा अनुभव होगा, उसे संसार को बता जाऊंगा। मैं अपना कर्म भोग रहा हूँ, किसी पर कोई उपकार नहीं कर रहा। हज़ूर दादा दयाल जी महाराज ने मुझे शिक्षा को बदल जाने की आज्ञा दी थी। उनकी आज्ञा का पालन करने से मैंने जो स्वयं अनुभव किया वह कहता हूँ :—

मेरा भेद न कोई पावे। मैं ही कहूँ तो कहन में आवे ॥

उस अवस्था को तो केवल वही बता सकता है, जो वहाँ जा सकता है, वहाँ रह सकता है। पर वहाँ जा कौन सकता है ?

पिण्ड अण्ड ब्रह्माण्ड से पारा। वह है देश हमारा ॥

जो पिण्ड, अण्ड और ब्रह्माण्ड से अर्थात् मन और आत्मा से परे जा सकता है, वह ही उसके बारे में कुछ बता सकता है।

पिरथम आमम रूप मैं धारा।

दूमर अलख पुरुष हुआ नारा ॥

तीमर सन्त पुरुष मैं भया।

सन्त लोक मैं ही रच लिया ॥

यह है हस्ती ! हैपना ! इसमें जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति होती है। ये तीनों जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाएँ हमारे शरीर की भी हैं और हमारे मन की भी और प्रकाश की भी। इन अवस्थाओं का ज्ञान केवल साधक ही पा सकता है और नहीं। देखो ! यूँ तो त्रिलोकी है। उसमें हमारी उंगली के तीन भाग, बाजू के तीन भाग, टांग के तीन भाग, शरीर के भी तीन भाग सिर, घड़ और टाँगें हैं। हर जगह तीन गुण (Trinity) हैं और इस ट्रिनिटी का आधार



वह चौथा पद है, जिसके सहारे वे तीनों खड़े होते हैं। हर-एक स्टेज पर शरीर, मन और आत्मा या रूह की तीन अवस्थाएँ होती हैं। इस मार्ग पर आता वही है जिसको यहाँ दुःख तथा कष्ट आते हैं।

जग जाग्रत भी दुःख मूल। सुपना भी दुःख सुख मूल ॥
सुषुप्ति कुछ घर आराम। वह भी नहीं ठहरन धाम ॥
तीनों में भरमत आठों जाम। पूरा नहीं कहीं विसराम ॥
अब करिये कौन उपाय। का से अब पूछूं जाय ॥
तड़पूँ और तरसूँ निस दिन विरह अग्नि जलूँ मैं दिन दिन ॥

हम सब के अन्दर किसी की तलाश है, हमें किसी चीज की इच्छा है। हमको इसका पता नहीं, परन्तु उस चीज की तलाश में हम खिंचे जा रहे हैं।

कोई राह न सुख की पावे। सब करम भरम भरमावे।
कोई तीरथ बरत बतावे। कोई जप तप माँहि लगावे।
निज भेद कहे नहीं कोई। बिरथा नर देही खोयी ॥
यह सोच करा मैं भारी। तब सतगुरु आन सुधारी ॥

जब कोई समय का सद्गुरु यहाँ आता है वह माँग और पूर्ति (Demand and Supply) के नियम के अनुसार ही आता है और केवल अधिकारी जीवों के लिए ही आता है। साधारण जीवों के लिए नहीं आता।

कर दया भेद बतलाया, तुरिया पद मारग सारा गाया ॥

जब आदमी शरीर को भूल जाता है, उस अवस्था का नाम मन की जाग्रत अवस्था अर्थात् तुरिया पद है।

तुरिया से आगे बरना। फिर उससे आगे चलना ॥
विस के भी परे लखाया। उसके भी पार मुनाया ॥
तिस परे और समझाया। कुछ आगे और बुझाया ॥
वहाँ से पुनि आगे भाखा। निज धाम मुख्य वह राखा ॥



कुल नौ दरजे हैं, तीन शरीर के, तीन मन के और तीन आत्मा के। जब तक कोई व्यक्ति अपनी जाग्रत और स्वप्न अवस्था को नहीं भूलेगा, अपने मन और आत्मा को नहीं भूलेगा, वह सतलोक और अलख लोक में नहीं जा सकता। मैं स्वयं भी नहीं जा सकता था। मैं दस-दस घण्टे अभ्यास करता रहा, मगर असलियत समझ में नहीं आई थी। जब आप लोगों की दया से, मुझे यह पता लगा कि आपको मेरा रूप प्रकट होता है और आपके काम कर जाता है, जबकि मैं वहाँ जाता ही नहीं तो बात मेरी समझ में आ गई कि जितने भी रूप और रंग मन के अन्दर में बनते हैं, वे सब मन का ही खेल हैं। मैं आप लोगों को अपना सद्गुरु मानता हूँ क्योंकि सच्चा ज्ञान मुझे आपके द्वारा ही मिला। अब अधिकतर समय मैं सत, अलख और अगम में रहने का यत्न करता हूँ। यह मेरे जीवन का अनुभव है।

इन तीनों में मेरा रूप। उहाँ से उतरी कला अनूप ॥

हमारी हस्ती की भी तीन अवस्थाएँ हैं। सत उसकी जाग्रत अवस्था है, अलख उसकी स्वप्न अवस्था और अगम उसकी नींद की अवस्था है। उस भण्डार में से एक किरण निकली और उसी एक किरण का ही यह सारा पसारा है। मैं तो यह कहूँगा कि यहाँ हजारों सोहं पुरुष, हजारों सुन्न, महासुन्न, हजारों त्रिकुटियाँ और हजारहा जमीनें हैं। एक बार मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि आभ वे बातें कहें, जो धर्मपुस्तकों में लिखी हों। मैं बोला, “अरे बाबा! कहाँ पुस्तकें और कहाँ सन्त!” यह मेरा स्वयं का अनुभव है गुरु नानक साहिब ने भी कहा है कि बाब्यों पाताल है और बाब्यों आकाश है।

उहाँ तक निज कर मुझको जानो, पूरन रूप मझे पहचानो ॥



वह मालिक क्या है ? मैं उसीका अनुभव करता हूँ। अभी समाधि में मैं उसी मालिक में ही था। प्रकाश एक मण्डल है और मैं उसे देखता हूँ। वह सर्वाधार एक जात है, अकाल पुष्प, परमतत्त्व आधार है, जिसमें से एक किरण निकली और उसी का ही यह सब विस्तार है।

अस दोग्य सप्तपुरुष निकारी। जोत निरंजन नाम धरा री ॥

मैं कहता हूँ कि अनेक जोत निरंजन हैं, स्वामी जी ने तो केवल एक ही कहा है। लेकिन इस रचना का कोई अन्त नहीं मिलता। विज्ञान भी चकित है। वैज्ञानिकों ने इस आकाशगंगा (Milky Path) से आगे एक बहुत बड़ी आकाशगंगा खोजी है :—

यह दो कला उतर कर आई।

झंझरी दीप में आन समाई ॥

जब कोई वस्तु गति में आती है, तो उसमें आवाज पैदा होती है और विकर्षण (Negative), आकर्षण (Positive) तत्त्वों से जोवन बन जाता है। मन और वस्तु है, रूह और वस्तु है और सुरत और वस्तु है।

यहाँ बैठ त्रिलोकी रची।

पाँच तीन की धूम अब मची ॥

उस शक्ति में से जो धार (Current) और किरण (Radiation) निकलती है, उससे संसार बनता है। जब मैं ऊपर जाता हूँ, तो उस समय शरीर भी होता है, मन भी होता है मगर संवेदना (Sensation) नहीं होती।

तीन लोक से मैं हूँ न्यारा। चार पाँच छः में विस्तार ॥

तीन लोक इक बन्द पसारा। सिन्ध रूप में अगम अपारा ॥

यह त्रिलोक एक बूँद या एक किरण का ही पसारा है। अब आप ही सोचो ! जब एक बूँद का इतना पसारा है,



कि जिसमें न जाने कितनी किरणें निकलती रहती हैं ।

उसी बन्द का सकल पसारा । वेद ताहि कहें ब्रह्म अपारा ॥

उसी का ही सारा खेल है । उसने जीव-जन्तु बना दिये, जो आज कष्ट में हैं । संसार में कितना दुःख है, क्लेश है, सन्ताप है । क्यों ? इसलिये कि सभी मन के चक्कर में हैं । उस मालिक तक कोई नहीं गया । स्वामी जी महाराज लिखते हैं कि सुरत प्रश्न करती है :—

दोहा :—सेवा बस तूम काल को, सौंप दिया जब मोहि ।

तो अब कौन भरोस है, फिर भी ऐसा होइ ॥

जब रचना अधी थी, तो काल सर्वाधार से सुरत को माँग कर लाया और रचना को पूरा किया । वह वृत्त है हम । हम सर्वाधार के अंश हैं । यहाँ आकर चक्कर में फँस गये और अपने घर वापिस जाना भूल गये । हम सुख और दुःख उठाते हैं । सरत सर्वाधार से कहती है “इस बात का क्या भरोसा है कि आप मुझको दोबारा काल को न सौंप दें ।”

तब स्वामी हँस कर यूँ बोले । कहें वचन मैं तुमसे खोले ।

जाग बूझ हम लीला ठानी । मौज हमारी हुई सुन बानी ॥

मौज क्या है ? यह प्राकृतिक नियम है कि जहाँ शक्ति है, वह फैलेगी और काम करेगी । रचना करना उसका स्वाभाविक गुण है । यह है मौज ।

काल रचा हम समझ बूझ के ।

बिना काल नहीं छोफ़ जीव में ॥

कद घात नहीं बिना काल के ।

मौज डी तब आस दयाल के ॥

यह रचना स्वाभाविक है और इस रचना का कोई अन्त नहीं मिलता । यँ दुखी जीवों का उद्धार करने के लिए सद्गुरु मनुष्य के चोले में आता है और उनको भेद बताता



है कि शरीर, मन और प्रकाश के चक्कर से निकल कर शब्द को पकड़ो। किसी चीज़ को ठीक तरह से समझने के लिए प्रश्नोत्तर का तरीका बहुत अच्छा है। इससे सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय के भावों को बताने के लिए 'तू' और 'मैं' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यह वाणी का जाल कहलाता है। कोई ही माई का लाल इस वाणीजाल से बच सकता है। सभी शब्दों के चक्कर में फँस जाते हैं।

मैं यहाँ सत्संग का काम क्यों करता हूँ ? मैंने प्रण किया था कि मैं अपना अनुभव संसार को बता जाऊंगा। वही कर रहा हूँ। यदि मैं गुरुपदवी पर नहीं आता, तो मुझे शायद यह भेद मालूम नहीं होता। दाता दयाल जी ने मुझे शिक्षा को बदल जाने की आज्ञा दी थी, ताकि लोगों को असलियत की समझ आ जाये और धर्म, कर्म और ईश्वर-भक्ति के कारण, वे आपस में झगड़ें नहीं। अब सतयुग का दौर आने वाला है और यह सन्तों को शिक्षा उसी सतयुग की कड़ो के लिए ही है। जब तक संसार को यह समझ नहीं आयेगी कि हम सब आये कहाँ से हैं ? हमारा असली घर है कौनसा ? हम यहाँ क्यों आये हैं ? यहाँ आकर मालिक को क्यों भूल गये हैं ? तब तक अज्ञान हमारे आपसी झगड़ों की जड़ बना ही रहेगा और जब तक अज्ञान दूर नहीं होगा एकता हो ही नहीं सकती।

मेरे पास दुःखी लोग आते हैं। मेरे पास शुभकामना है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि दुःखी लोगों को सुख मिले, आराम मिले। मगर लाभ केवल उन्हीं लोगों को ही होता है जिनका विश्वास अटल होता है और विश्वास अक्सर दुःखी लोगों का ही बैठता है। मास्टर चनन सिंह गुरदासपुर से अपनी बीमार औरत को लेकर मेरे पास यहाँ आया।



मैंने उसे प्रसाद दिया और बोला, “बेटी! इसको खाया करो, स्वस्थ हो जाओगी।” वह स्त्री को लेकर वापिस चला गया। कुछ दिन के बाद उसका पत्र आया। उसमें उसने लिखा, “बाबा जी! आपके प्रसाद से मेरी स्त्री बिलकुल स्वस्थ हो गई।” अब आप तो यही सोचोगे कि मैंने उसकी स्त्री को ठीक किया। नहीं। वास्तव में, इसकी प्रबल इच्छा और विश्वास का प्रभाव मेरे मस्तिष्क पर पड़ा और मेरे मुँह से जोर से निकल गया, “तू अच्छी हो जायेगी।” इस संसार में, तुम्हारे मन का संकल्प, तुम्हारी इच्छा, तुम्हारा विश्वास और तुम्हारा कर्म काम करता है। जब तुम्हारा विश्वास कहीं बैठ गया, समझो कि तुम्हारा काम बन गया। मीराबाई को मालिक पर अगाध विश्वास था। उसको विष का प्याला भेजा गया और कहा गया कि यह उसके ठाकुरों का प्रसाद है। मीराबाई को उसकी दासों ने बता भी दिया था कि वह प्याला प्रसाद का नहीं बल्कि विष का है, मीराबाई उसको अमृत समझकर पी गई। क्योंकि उसका विश्वास था कि ठाकुरों का प्रसाद अमृत होता है। वह विष मीरा के विश्वास के कारण अमृत ही बन गया। विश्वास में बहुत शक्ति होती है तब शुभभावना का प्रभाव पड़ता है।

जिस अवस्था में, या जिस स्टेज पर, कोई महापुरुष अभ्यास करता है वह स्टेज, अवस्था, उस सन्त के मस्तिष्क पर तारी होती है, तो जब वह महापुरुष या सन्त आँख खोलता है, उसकी आँखों और चेहरे से उस स्टेज का अक्स दूसरों पर पड़ता है और अधिकारियों की वृत्ति को बदल देता है। कल एक आदमी ने रुद्राक्ष की माला के बारे में बताया कि रुद्र नाम है शिव जी का। शिव जी ने बहुत तप किया। सच्चाई का मुझे पता नहीं, मगर मैं इसको सच



भावना है। जब शिव जी ने आँख खोली, तो उनकी आँखों के दो आँसू गिरे। उन आँसुओं से दो पेड़ पैदा हुए। उन्हीं पेड़ों का ही यह रुद्राक्ष है। रुद्राक्ष का शाब्दिक अर्थ है, शिव जी की आँखों के आँसू।” कहते हैं, जो रुद्राक्ष को पहनता है, वह जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है। जन्म-मरण से बच जाता है या नहीं, यह तो मुझे मालूम नहीं, मगर उसका विचार जरूर बदल जाता है।

आप लोग भाये हैं संसार में रहने के लिए भाषके लिए है वेद-धर्म 'शिवसंकल्पमस्तु' 'कभी बुरी बात मत सोचो।' सदा यह सोचो कि जो कुछ हो रहा है और जो कुछ होगा वह अच्छा होगा। जा अपने आद घर वापस जाना चाहते हैं और फिर वापस आना नहीं चाहते, उनके लिए है शब्दयोग। अपने अन्तर में, शब्द को पकड़ो। शरीर और मन से भी शब्द पैदा होते हैं। परन्तु यह शरीर योग या मन योग नहीं है यह सुरत-शब्दयोग है। ऊँचा जाने के लिए शरीर और मन को भूलना पड़ता है। जिस इन्सान को यह पता लग जाता है कि इस संसार में दुःख ही दुःख हैं, उसके मन में इस संसार के चक्कर से निकल जाने की इच्छा होती है।

मैं मालिक को मिलने निकला था। हज़ूर दाता दयालु श्री महाराज ने मेरे नाम निम्नलिखित शब्द लिखा। वह कहते हैं कि जिस मालिक को तू मिलना चाहता है, वह तो काल का चक्कर है :—

काल चक्र का सहज हिंडोला। झूला अचरज न्यारा ॥
सब कोई झूले झूला चढ़कर। काल झुलावन हारा ॥
चन्द्र सूर दोऊ गगन में झूलें, झूलें नौ लख तारे ॥
जीव जन्तु पृथ्वी में झूलें। नर पशु सकल विचारे ॥
राजा झूला, रानी झूली। और प्रजा समुदाई ॥



ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर झूले। झूली सब दुनियाई ॥
लक्ष्मी झूली, दुर्गा झूली। झूली गायत्री महारानी ॥
देवा झूले देवी झूले। जल थल अग्नि पानी ॥
काल भी झूला अपनै झूले। सृष्टि प्रलय कर प्यारे ॥
वह भी बचा न चक्कर से अपने। झूला झूले सारे ॥

काल कैसे झूले से न बच सका? समय आता है, जब पृथ्वी पानी में, पानी वायु में, वायु आग में और आग प्रकाश में समा जाती है और फिर जिस काल ने इस संसार को रचा है उसकी भी समय पर मृत्यु हो जाती है। उसका विराट रूप, अव्याकृत रूप और हिरण्यगर्भ रूप भी समय पर समाप्त हो जाते हैं।

सन्तमत में, संसार के पैदा करने वाले को, कर्त्तापुरुष को पूजा नहीं जाता, क्योंकि कर्त्तापुरुष की सृष्टि में दुःख ही दुःख है।

पण्डित कभी अनाड़ी होते। कभी अज्ञानी ज्ञानी ॥
कभी जड़ मिलजुल चेतन ठहरे। कभी चेतन जड़ जानी ॥
समझत बने कथन नहीं आवे। मन वाणी अलसानी ॥
कैसे कोई समझावे किसको। समझे कोई गुरु ज्ञानी ॥
एक दशा में कोई नहीं बरते। कभी बैठा कभी दौड़ा।
कभी थका कभी सोया लेटा। काल चक्र अति चौड़ा ॥
झूले की है विचित्र कहानी। कथा वार्त्ता न्यारी ॥
नर को हम समझावन आये। सुने न बात हमारी ॥
दुःख-सुख, सुख-दुःख द्वन्द्व पसारा। द्वन्द्व से प्यार बढ़ाया ॥
द्वन्द्वभाव से जगत् रचाना। द्वन्द्व के फाँस फैलाया ॥

द्वन्द्व है दोपना। तुम बाबा फकीर को प्यार करते हो और उसके लिए रोते हो। जो गुरु को बाबा फकीर समझता है या सावन सिंह जी महाराज समझता है, वह दुःख उठाता



है, क्योंकि उसने गुरु के रूप का मतलब ही नहीं समझा।
बाबलो! गुरु तुम्हारी अपनी ही जात है, वह हर समय
तुम्हारे पास है। यदि मेरे मरने पर कोई रोता है, तो उसने
मेरी शिक्षा को नहीं समझा। यदि तुम्हारे सामने मुझे कोई
गालियाँ दे और तुम्हें क्रोध नहीं आये, तब मैं कहूँगा कि
तुमने मेरी शिक्षा को समझा है।

मन बुद्धि और चित हंकार। सो झूले की रसरी ॥
दोलड़ त्रयलड़ चौलड़ बन आई। जीव निबल को जकड़ी ॥
जकड़े माया के फन्दे में, रोये और चिल्लाये ॥
शोर मचाये बहु चिल्लाये, छूटन विधि नहीं पाये ॥

मेरी भी यही दशा थी। दाता के पास जाता, रोता,
वापिस आता, तो रोता। बसरे-बगदाद में तम्बूरा बजाता
और रोता ही जाता। वह क्या था? वह मेरा द्वन्द्व था।

मैं दाता की शरण में गया था, उन्होंने मुझे अपनाया।
गुरु को केवल मत्थे टेकने से तुम पार नहीं जा सकते। गुरु
की बात को समझो और उस पर अमल करो तब पार जा
सकोगे। तुम लोग तो संसारी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए
गुरु के पास जाते हो, इसलिये तुम सन्तमत के अधिकारी
नहीं हो :—

खेल खिलाऊँ सुगम सुहेला। सुरत शब्द मत गाऊँ ॥
काल हिडोले से तू बाचे। विधि विचित्र समझाऊँ ॥
कर सत्संग विवेक से गुरु का। गुरु दयाल हितकारी ॥
साधु बनकर साध ले युक्ति। जा झूले के पारी ॥

दाता दयाल जी महाराज ने मुझे गुरु बनाकर मेरे साथ
यह खेज किया। मैं न गुरु हूँ, न महात्मा। बात मेरी समझ
में नहीं आती थी। जब यह बात मेरी समझ में आई कि मैं
किसी के अन्तर में नहीं जाता तो मेरी समझ में आया कि



मुझे यह समझाने के लिए ही दाता ने मुझे यह काम दिया था। अब यदि मैं यह कहता हूँ कि मैं समय का सद्गुरु हूँ, तो मुझे कोई सुरखाव का पर तो नहीं लग गया :—

नर शरीर सुर दुर्लभ पाया। सतसंगत में आया ॥
तेरा दाँव पड़ा है पूरा। सोच समझ तज माया ॥
अब की चूक मौज न ऐसी। त्याग काल की आशा ॥
आज का साधन आज ही कर ले। कल को होगा उदासा ॥

संसार चाहे कुछ भी कहे, मगर यह सच है कि भक्ति को छोड़कर शब्द की भक्ति करो :—

बाच - २ नहीं अवसर प्रानी। काल महा दुःखदाई ॥
जो कोई करे काल की आसा। सो पाछे पछताई ॥
राधास्वामी दया के सागर। तेरे कारन आये ॥
सीस चरण में उनके झुका कर। अपना काज बनाये ॥
राधास्वामी राधास्वामी। राधास्वामी गाना ॥
मन बचन कर्म से भक्ति कमाना। झूले बाहर आना ॥

किसकी भक्ति ? राधास्वामी की। राधास्वामी क्या है ?

“राधा आद सुरत का नाम, स्वामी आद शब्द पहचान ।”

सुरत के शब्द की भक्ति करना राधास्वामी है। आजकल समय बदल गया है। गुरु नानक और दूसरे सन्तों के जन्मदिन तो मनाये जाते हैं, पर उनकी शिक्षा पर तो कोई अमल नहीं करता। तुम लाख उपाय करो, पर जब तक तुम सन्तों की शिक्षा पर अमल नहीं करोगे, तुम सुखी नहीं रह सकते। सन्तों ने उन जीवों के लिए जो संसार के सुख-दुःख से निकलना चाहते हैं, नामदान जासो किया। गुरु-भक्ति यही है, जो तुम इस समय कर रहे हो :—

दर्शन करे पुनि बचन सुने। सुन सुन कर फिर मन में गुने ॥
गुन गुन काढ़ लेवे तिस सारा। काढ़ सार तिस करे अहारा ॥



नाम की भक्ति क्या है? अपने अन्तर में शब्द को पकड़ना। लेकिन हर एक आदमी अपने अन्तर में, शब्द को पकड़ नहीं सकता इसलिये मैं किसीको नाम नहीं देता। सुमिरन ध्यान बता देता है इससे तुम्हारा संसार बन जायेगा। नाम उनके लिए है :—

विषयों से जो होय उदासा। परमारथ की जा मन आसा ॥
धन सन्तान प्रीत नहीं जाके। जगत् पदार्थ चाह न ताके ॥
तन इन्द्री आसक्त न होई। नींद भूख आलस जिन खोई ॥
बिरह बान जिन हृदय लागे। खोजत फिरे साध गुरु जागे ॥
जिसका सुमिरन ध्यान करते हो, उसको पूर्ण मानो।
हो संकता है कि इससे तुमको सुख मिल जाय।

सबको राधास्वामी !





फकीर-सत्संगी संवाद

परमसन्त परम दयाल पंडित फकीर चन्द जी महाराज

मैंने किसी विशेष भाव आधोन निःस्वार्थ भाव से सच्चाई या सारतत्त्व की खोज के क्रम में जो कुछ भी अनुभव किया, वह सतपुरुष राधास्वामी दयाल की वाणी के साथ ठीक निकला। इसलिये कृतज्ञतावश, मेरी बुद्धि इस मत की सच्चाई और बड़प्पन को मानती।

राधास्वामी मत वालों को अभी इस शिक्षा की हवा तक नहीं लगी। उनमें केवल संस्कार ही डाला गया है, जो इस जन्म या अगले जन्मों में सम्भवतया उभरे।

आज एक सज्जन जो किसी गद्दी के शिष्य हैं मुझे मिले और क्रोध में बोले, “आप जो कुछ भी कहते हैं या जो कुछ आपने लिखा है, वह राधास्वामी मत की शिक्षा के विरुद्ध है।” मैं हँसा और कहा, “मैं जो कहता हूँ, वह उस सिद्धान्त और सच्चाई के आधार पर ही है, जिसके आधार पर सतपुरुष राधास्वामी दयाल सच्चाई के साक्षात् अवतार ने वर्णन किया है।

‘वेद पुराण स्मृति शास्त्र, ये सब मारें जीव की जान।’
सत्संगी—बह रहस्य या सच्चाई क्या है, जिसके आधार पर ऐसा कहा गया है?

फकीर—ऐ मेरे मित्र ! बहैसियत गुरु, मुझे यह विश्वास हो गया कि जो किसी को मिलना है या मिलता है, वह



उसकी भावना, विश्वास और ख्याल का परिणाम होता है और समस्त संसार इसी भावना, विश्वास और ख्याल के चक्र में आया हुआ है, मगर समझता यही है कि कोई बाहरी शक्ति काम करती है। वास्तव में, वह शक्ति सर्वव्यापक होती हुई सब मनुष्यों के अपने अन्तर मौजूद है, जो भ्रम में आकर दूसरों के आधीन हो जाती है।

मैं भी ऐसा ही समझता था, मगर गुरुपशु बना हुआ था। यह गुरुपशुपना सन् 1919 तक ही था। उसके बाद सच्ची भक्ति की ओर अब भी करता हूँ।

दाता दयाल जी महाराज ने आचार्य पदवी देकर भेद समझा दिया और अब इस रहस्य को जीवों के कल्याणार्थ प्रकट कर रहा हूँ। पाहले गुरु (सैन-बैन) किया करते थे। अब मेरे जिम्मे डंडे मार कर समझाना है। यह काम हजूर साँवले शाह ने दिया।

राधास्वामी मत की शिक्षा है :—

‘आप आपको आप पहिचानो।

कहा और का नेक न मानो ॥’

सत्संगी—व्यास, आगरा व अन्य जगह जो राधास्वामी मत है, क्या वह गलत है ?

फकीर—नहीं, गलत तो नहीं है, परन्तु वहाँ की शिक्षा पूर्णता लिये हुए नहीं है। मुझे नहीं मालूम कि तुम किस गद्दी से सम्बन्धित हो, मगर तुम्हारा जीवन और तुम्हारे सबाल-जवाब यह सिद्ध करते हैं कि तुमको राधास्वामी मत का तनिक भी ज्ञान नहीं। जिस तरह कट्टरपन्थियों को वेद, पुराण, स्मृति और



शास्त्र बांध लेते हैं, ऐसे ही तुमको तुम्हारे गद्दी बालों ने वाणी के जाल में बुरी तरह से बांध रखा है। क्रोध से भरे हुए तुम मेरे पास आये हो। क्या यह सन्तमत है ?

सत्संगी—वाणी कहती है गुरु की टेक रखो।

फकीर—मैं भी तो यही कहता हूँ। मगर टेक किस गुरु की ? वह टेक पूर्ण गुरु की है। जिसको पूर्ण गुरु, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण भेद मिल गया, फिर मालूम है कि उसकी क्या अवस्था होती है ?

‘निन्दा स्तुति एक समान।’

यह निन्दा-स्तुति केवल अपनी ही नहीं, ज्ञानी किसी की भी स्तुति या निन्दा पर हर्ष या शोक नहीं मनाता।

सत्संगी—आपकी बात को समझना बहुत कठिन है, मगर बात सच्ची ज्ञात होती है।

फकीर—राधास्वामी मत या सन्तमत को समझना महा कठिन है। यदि कोई समझ भी जाय, तो अमल करना अत्यन्त कठिन है।

सत्संगी—फिर उस पर क्रियाशील (बाअमल) होना कैसे सम्भव है ?

फकीर—केवल सत्संग से, बशर्ते सत्संग कराने वाला स्वयं क्रियाशील (बाअमल) और सन्त हो, जो स्तुति और निन्दा, तथा “मैं”, “तू” के भाव से अलहदा हो चुका हो और निज स्वरूप में लय हो चुका हो।

सत्संगी—इन भावों से अलग होने का मार्ग ?

फकीर—केवल साधन और पूर्ण पुरुष का सत्संग।

सत्संगी—आप बार-२ पूर्ण पुरुष का नाम लेते हैं। क्या ये



सत्संग कराने वाले पूर्ण नहीं हैं ?

फकार—यदि सच पूछो तो कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में अपनी राय प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि किसी को किसी के अन्तःकरण या मानसिक हालात की जानकारी नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको आप ही जानता है। जैसा-२ कोई किसी को समझता है, वैसा-२ उसको फल मिलता है। सुनो ! मैं आपको एक सच्ची घटना सुनाता हूँ।

एक व्यक्ति ने गुरु का स्वांग भरा। उसने बहुत से शिष्य बना लिये। एक शिष्य का उस पर अगाध विश्वास हो गया, इससे उस शिष्य की मानसिक शक्ति बहुत बढ़ गई। उसे ऋद्धि-सिद्धि मिली। उसे दूसरों के हालात की जानकारी हो जाती थी। वास्तव में वह स्वांग-धारी गुरु व्यभिचारी था। उसने उस श्रद्धालु शिष्य की पत्नी को भी नहीं छोड़ा, उस पर हाथ डाला। पत्नी ने जब अपने पति से शिकायत की तो उसने गुरु के प्रति इतनी अगाध श्रद्धा के कारण अपनी स्त्री पर विश्वास नहीं किया और उसे पीटा। अन्त में उस स्त्री ने धीरे-२ अपने पति को यह विश्वास करा दिया कि वह स्वांगी गुरु व्यभिचारी है। अब उस श्रद्धालु शिष्य का गुरु के प्रति विश्वास हट गया और उसकी सारी ऋद्धि-सिद्धि जो विश्वास के कारण मिली थी नष्ट हो गई। वह शिष्य मुझे चार साल पहिले मिला था। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो कुछ भी आपको मिलता है, वह आपके अपने ही विश्वास के कारण मिलता है।

दूसरा उदाहरण—होशियारपुर के निकट एक स्थान शिवबाड़ी का है। वहाँ एक महात्मा थे, जो वैराग्य और



भक्ति के आवेश में आकर नौकरी इत्यादि छोड़-छाड़ कर वहाँ रह रहे थे। उनको गुरु की खोज थी। बहुत वर्ष पहिले वह कपूरथला गये थे। वहाँ उसका सम्पर्क एक शराबी-कवाबी मार्ग के एक साधु से हुआ, जिसके बहुत चले-चाँटे थे। वह आदमी बहुत ही सीधा-सादा था। उसने उस साधु से नाम ले लिया। मगर चूँकि वह गुरु के मनलब का सिद्ध नहीं हुआ तो उस गुरु ने उसे अपने डेरे से निकाल दिया। अन्त में वह शिवबाड़ी में आ गया और चूपचाप 12 वर्ष तक साधना करता रहा। उसमें ऋद्धि-सिद्धि आ गई। यहाँ तक कि भयंकर साँप तथा फाड़ खाने वाले जानवर उसके साथ खेलते रहते। जब उस स्वांगधारी गुरु को पता चला कि उसका चेला इतनी करनी वाला हो गया है, वह शिवबाड़ी में जाता और साधु को गाली निकाल कर कहता था कि वह उसे शराब और मांस दे। वह साधु अपने प्रेम करने वाले शिष्यों को कहता कि वे उसके गुरु को मांस और शराब दे दें। अतः ऐ मेरे सत्संगी मित्र ! तुम समझ गये होगे कि अपूर्ण गुरु कौन होता है और पूर्ण कौन। गुरु-पूर्ण गुरु आईडियल है, इष्ट है। पूर्ण गुरु शिष्य को यह निश्चय कराता है कि :—

तेरी काया में है सब कुछ बन्दे, काहे को भटक रहा ।
तेरे अन्दर कुल है जमाना, क्यों खुद से तू गाफिल हो रहा ॥
तेरे अन्दर राम कृष्ण है, तेरे अन्दर है करतार ।
तेरे ही अन्दर सतगुरु बैठे, तेरे अन्दर शब्द जनकार ॥
तू आप अंश है, इस पूर्ण परमतत्त्व की यार ।
भूल भरम में भटक रहा है, खोजे बाहर यार ॥
इसलिये जहाँ लोगों को अपने जाल में फँसाया जाता है, सच्चाई नहीं बताई जाती, हेराफेरी होती है, वहाँ पूणता



कैसे आयेंगी ? जहाँ एक गुरु दूसरे गुरु का खण्डन करता है, वहाँ पूर्णता नहीं है।

सत्संगी—राधास्वामी दयाल तथा कबीर नै भी तो दूसरों का खण्डन किया है। वह भी पूर्ण नहीं थे क्या ?

फकीर—इनका खण्डन उसी आधार पर किया गया है, जिनका जिक्र मैंने किया है। उनका कहा भी तो यही है कि मनुष्य का मुक्तिदाता, उसका रक्षक, उसका सद्गुरु, उसका राम, उसके स्वयं के अन्दर ही है, उसका अपना ही स्वरूप है। राधास्वामी दयाल तथा कबीर पूर्ण थे। परन्तु आजकल तो हर पन्थ का चेला यह कहता है कि केवल उसका ही गुरु पूर्ण है बाकी सब के सब अपूर्ण हैं। जब तक लोग उसके गुरु की चरण में नहीं आयेंगे वे सत पद को प्राप्त कर ही नहीं सकते। सन्त, सच्चे सन्त तो यह कहते हैं 'ऐ मनुष्य ! तू स्वयं सत का अंश है वह मालिक और सच्चा सद्गुरु तुम्हारे अंग-संग है।' ऐ मेरे प्यारे सत्संगी अब तुम स्वयं ही सोचो और फैसला करो।'

सत्संगी—कुछ समय चप रहने के बाद कहता है, "बात तो आप ठोक कह रहे हैं, परन्तु यह कठिन है।"

फकीर—इसलिये ही तो कहता हूँ कि केवल किसी निर्बन्ध पुरुष का सत्संग करो। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। मैंने बहुत कष्ट सहन करके सच्चाई की घोषणा की है ताकि जिज्ञासु जीवों को भेद बता जाऊँ। परन्तु मेरी बात को समझने वाले बहुत कम हैं। ये वाणियाँ, वेद शास्त्र या धार्मिक पुस्तकें मनुष्य को केवल पूर्ण गुरु की शरण में जाने को आकर्षित करते हैं, परन्तु उसे स्वतन्त्र नहीं करते।



सत्संगी—आपकी शिक्षा से तो सारी बात का फैसला हो जाता है
फकीर—नहीं फैसला नहीं, हाँ समझ आ जाती है, बाकी इस
पर चल कर अमल तो आपको ही करना है।

सत्संगी—इस अमल के लक्षण क्या हैं ?

फकीर—न कोई बैरी न मीत है अपना।

जग है यह एक रैन का सपना ॥

सुरत ने अद्भुत भेष बनाये।

बिना गूढ़ ज्ञान गहे जग में फँसाया ॥

सत्संग साधन से राज को पाया।

भरम गया और संशय को मिटाया ॥

जब लग जियूं जीवन्मुक्ति प्राप्त।

अन्त समय परम तत्त्व समाया ॥

जब लग जीना कर्म कमाना।

भव के दीरघ रोग गँवाया ॥

यही मिला है फल मुझको भाइयो।

जो साफ-र यह है कह गया ॥

राधास्वामी दयाल के पन्थ से, हमने जीवन्मुक्ति को पाया।

न कोई बैरी न मीत हमारा, न स्वामी सेवक खेल खिलाया ॥

गुरु गुन पल-र छिन-र गाऊँ, जिनकी दया से शान्त चित्त हो पाया।

चित्त की वृत्ति अब नहीं डोले, अज्ञानवश था चक्कर खाया ॥

सत्संगी—तो इस ज्ञान के हो जाने के बाद, गुरु और चेले का

सम्बन्ध रहता है क्या ?

फकीर—हाँ रहता है मगर सेवा और कृतज्ञता के रूप

में। जब तक जीवन है गुरु की सेवा और उसकी शिक्षा का

प्रचार करना शिष्य के लिए अनिवार्य है। जो ऐसा नहीं

करता, वह कृतघ्न है। मैं इस राज को 1919 से जानता हूँ।

मैंने दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी को कभी नहीं छोड़ा।

आज तक उनका सेवक बना रहा हूँ, रहूँगा और हमेशा

राधास्वामी मत के गण गाता रहूँगा।



राधास्वामी योग—तरंग (14)

मनुष्य का निज स्वरूप

श्री देवीचरण के नाम एक पत्र

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

सुनो देवीचरण :

जीवन किसी वस्तु की खोज करता था। सारी आयु इसी धुन में गुजरी। भेद समझ में आ गया, अज्ञान मिटा। जन्म-मरण और आवागमन तथा ईश्वर आदि की खोज समाप्त हुई। मालिक एक तत्त्व प्रधान है। सब का अपना निज स्वरूप है। तुमने तथा कुछ अन्य मित्रों ने मुझसे प्रेम किया। मैं कुछ सबको देना चाहता हूँ। वह देना है एक प्रकार की आन्तरिक शान्ति, यह मनुष्य को जब आयेगी जब उसे अपने स्वरूप का पता चलेगा। हाँ संस्कार (Radiation) लाभ जरूर पहुँचा सकता है लेकिन केवल वहाँ जहाँ लोगों को इसकी जरूरत महसूस हो।

दाता दयाल जी महाराज का अत्यन्त अहसान है कि जिन्होंने खेल खिलाकर मुझे वह आन्तरिक शान्ति दिला दी और कुरेद मिटा दी। मैं आपका ध्यान दाता दयाल जी के अन्तिम दिनों के सत्संगों की ओर दिलाता हूँ। उन्होंने सत्संग में 5 या 6 मूर्ख चने थे। एक शायद भाई जी (नन्दू भाई) थे, दूसरी दयाल की माई आदि-२।

उनके मूर्ख शब्द में एक हकीकत तथा रहस्य छुपा है। वे सब व्यक्ति जिनको मूर्ख का खिताब मिला था दाता



दयाल जी के बड़े प्रेमी थे और उन्होंने दाता को अपना सद्गुरु तथा मुक्तिदाता माना हुआ था। इसलिये ही दाता ने उन्हें मूर्ख का खिताब दिया था। मूर्ख का अर्थ होता है अज्ञानी, जिसको ज्ञान न हो। समझे मेरी बात को? नहीं समझे तो साफ सुनो। मनुष्य का मुक्तिदाता कोई नहीं है, वह अपने ही भ्रम तथा अज्ञान के कारण स्वामी, सेवक या दास बनता है।

इन्सान की जात आप है पूरण, उनको कौन दिलायेगा मुक्ति।
जो कुछ है वह है इन्सान की जात, नादान बनकर ढँढ़ते मुक्ति।

यह अनुभव सत है, मगर जब तक मनुष्य मनुष्य के चोले में है इस चक्र के नियम के प्रभावों से बच नहीं सकता। जब तक वह इस जीवन को प्यार करता है, उसके लिए सब शिक्षा, जिसका संकेत मैंने किया है, या सतपुरुष राधास्वामी दयाल, सन्त कबीर, दाता दयाल ने किया है, लाभदायक न होगी, और कभी २ 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का'। स्वामी जी का शब्द है :—

मैं कहूँ कौन से भाई। कोई मेली नजर न आई ॥

जो बात सन्त बतलाई। काऊ से मेल न खाई ॥

आम जनता के लिए मेरी शिक्षा केवल इन्सानियत की है, जिसमें जीने का रहस्य बताता हूँ या एक आस, एक विश्वास का ख्याल देता हूँ, ताकि विभिन्न धर्मों, पन्थों और डेरों में बटे हुए भोले-भाले लोगों को सार का ज्ञान हो जाये और वे लुटें नहीं। दाता दयाल जी ने बहुत कोशिश की कि शिक्षित वर्ग का पक्षपात दूर हो। मेरी भी यही कोशिश है, यद्यपि सन्तमत कुछ और बस्तु है।

सन्तों का मार्ग बहुत ही ऊँचा है—

कोई - कोई जीव बने अधिकारी।

जिसको यह जिन्दगी न हो प्यारी ॥



न कोई बड़ा है न छोटा न कोई बुरा है न भला ।
भटकती है क्यों दुनिया मजहबों के पीछे ॥
जब किसी के हाथ में न कुछ भी घरा है ।
जो कुछ होना है होकर रहे 'देवीचरणा' ॥
फकीर अब अस्तुल बना है ।
न लेना न देना, न गरज है न मतलब ॥

यदि किसी व्यक्ति को ऐसे पुरुष का संस्कार जो स्वयं निर्बन्ध है, जो स्वामी और सेवकपने से स्वतन्त्र है मिला है, तो वह अवश्य इस श्रेणी में पहुँच जायेगा, क्योंकि यह संस्कार या संगत (Radiation) का सिद्धान्त प्राकृतिक है ।

मेरे अनुभव में जो सन्तमत की शिक्षा या भेद आया है, यदि वह सत है, तो मेरे दर्शन और संस्कार से दूसरों को मानसिक और आत्मिक शान्ति मिलनी हो चाहिए । यदि नहीं मिलती, तो इस शिक्षा के अनुसार मैं स्वयं अपूर्ण हूँ ।

देवीचरण ! जीवन अत्यन्त अमल और सच्चाई के ढाँचे में ढना है । सम्भव है कि मैं गलत हूँ । मुझे कोई अफसोस नहीं । मैंने जो कुछ हो सका किया । इस बात को आजमाने के लिए मैंने इस पदवी को प्राप्त किया है या नहीं । मैं चाहता हूँ कि मनुष्यमात्र को शान्ति मिले (Peace to Humanity) ।





गुरु सब की आंखों का तारा

सबका सहारा

परमसन्त सद्गुरु हज़ूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज, मीरापुर, इलाहाबाद

दिनांक 13-2-85

शब्द

आंखों का तारा सबका सहारा, हित चित से तू प्यारा है ;
निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी, सुख सम्पत्ति परिवारा है ;
घट घट दासी आनन्द रासी, अविनाशी भंगलकारी ;
रोम रोम में रमता जोगी, रोग सोग से न्यारा है ;
गुणातीत गोविन्द मुरारी, पुरुषोत्तम करुणा सागर ;
जन मन रंजन दोष विभंजन, प्रेम प्रीति भण्डारा है ;
नाम लेत भव सिंधु सुखावे, ध्यान धरत कलिमल आवे ;
भव दुःख मेटन दोष नसावन, भक्ति रीति का सारा है ;
कर्म धर्म वैराग जान तत्, विज्ञानी पूरा सच्चा ;
हे दयाल करो दया की दृष्टि, हृदय दुःखी इकारा है ;
अब तो शरण में आन पड़ा हूँ, एक आम तेरी मूँहकी ;
राधास्वामी शरण में प्रीति रहे नित, वही धुर इष्ट सहारा है ।

गुरुदेव जगद्व्याप्तम्, ब्रह्मा-धिष्णु-शिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नहि किञ्चित्, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
मानवधर्मस्य धातारं, दाता दयालस्य प्रियतमम् ।
सन्तधर्मस्य गोप्तारम्, फकीरं बन्दे जगद्गुरुम् ॥



शधःस्वामी,

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, उपस्थित भाइय और बहनो !

इस युग का, जिसे हम कलियुग कहते हैं, एक विशेष महत्त्व यह है कि इस युग में हर वस्तु सुगम और सहज है। चाहे वह वस्तु हमारे भौतिक जीवन के लिए हो, चाहे वह बौद्धिक जीवन के लिए चाहे वह आध्यात्मिक जीवन के लिए हो या रूहानियत के लिए हो। जिस्मानियत, बुद्धि, रूहानियत सभी इस युग में एक सहज रास्ता अपना रहे हैं। वैसे हमारे ऋषियों ने प्राचीन काल में जीवन को बहुत समन्वित (Integrated) बनाया लेकिन उस समय हर चीज के लिए काफी समय देना पड़ता था। सिर्फ किसी एक विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी, जो उपनिषद् काल के विश्व-विद्यालय थे, उनमें बारह-बाह्र वर्ष स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के लिए व्यतीत करने पड़ते थे। उपनिषद् में एक जगह पर एक कथा आती है कि एक शिष्य ब्रह्मचारी बारह वर्ष तक एक आश्रम में रहा। उसे सिर्फ व्याकरण में उपाधि लेनी थी। वह वहाँ रहना था। ऋषि-पत्नी सबको खाना खिलाती थी। वह स्नातक विशेषकर अलग से खाना खाता। बारह वर्ष के बाद एक दिन गुरु ने कहा “आज तेरा काम समाप्त हो गया, तू स्नातक हो गया”। वह शिष्य उस दिन जब खाना खाने के लिए बैठा, तो ऋषि-पत्नी ने खाना परोसा। खाते वक्त उसने कहा, “माता जी! आज आप सबजी में नमक डालना भ्रायद भूल गईं।” ऋषि-पत्नी बोली, “बेटा! ऐसा लगता है कि आज तेरी शिक्षा समाप्त हो गई, तू स्नातक हो गया है।” ब्रह्मचारी बोला, “माता जी! नमक का स्नातक होने से क्या सम्बन्ध है?” माता बोली,



“बेटे ! बारह साल तक तू यही खाना खाता रहा, मैंने कभी नमक नहीं डाला। तुझे होश नहीं रहता था। आज तुझे होश हो गया कि नमक नहीं पड़ा है भोजन में।” वह समय था जब बौद्धिक शिक्षा लेने में भी इतना समय लगता था, रूहानियत का तो कहना ही क्या ? एक शिष्य गया एक गुरु के पास और सवाल किया “मैं कौन हूँ ?” यह सवाल हर इन्सान कभी न कभी जरूर उठता है जिन्दगी में, खासकर जब उसको जरूरतें पूरी हो जाती हैं और उन जरूरतों के पूरा हो जाने के बावजूद भी मन में कुरेद होती है कि, मैं कौन हूँ ? आखिर मैं क्यों पैदा हुआ, पढ़ा-लिखा, नौकरी की, शादी की, बच्चे पैदा किये। पर इसके आगे क्या ? सब दुःख-सुख से गुजरने के बाद, अच्छी हाजत में रहते हुए भी, यह सवाल पैदा होता है कि भई, यह सारा झगड़ा आखिर है क्या ? यह एक बड़ा भारी सवाल है कि मालिक, जो अपने आप में पूर्ण है, ‘पूर्णमदः’, उसमें किसी चीज की कमी नहीं है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सर्वाधार है, सभी चीजें उसीसे निकलती हैं तो फिर उसने यह अड़खंजा क्यों खड़ा कर दिया ! जिसको देखो अपनी धुन में लगा हुआ है। किसी को कोई दुःख है, किसी को कोई दुःख। आखिर यह क्या है ? यह सवाल हर एक जादमी कभी न कभी करता है। एक बार मेरी पत्नी ने भी मुझसे यह सवाल किया “यह संसार क्या है ? क्यों बना है ? इसकी क्या जरूरत थी ? अगर यह नहीं होता तो ठीक ही नहीं था क्या ?” बड़े-बड़े दार्शनिकों, भक्तों और ऋषियों ने इस पर विचार किया। आखिर में सब कहते हैं—मौज, यह सब उसकी मौज है, उसकी लीला है। उसका वार-पार का कोई पारावार नहीं पा सकता।

“अनादि तेरी अनन्त माया,
जगत् को लीला दिखा रही है।”



तो लीला है उसकी। लीला का मतलब खेल है। बच्चे खेलते हैं सारा दिन। उनसे पूछा जाय—“बच्चो, तुम क्यों खेलते हो?” कोई जवाब नहीं। बस, खेलते हैं। उतका स्वभाव है, इसलिये खेलते हैं। या यों कहिये कि बच्चों के अन्दर अधिक शक्ति होती है। बी० एड० में पढ़ाते हैं प्राचुर्य शक्ति का सिद्धान्त, जो जरूरत से ज्यादा शक्ति (Surplus Energy) होती है, उसको खपाने के लिए। कई बार हम यह भी कह देते हैं कि मालिक की शक्ति अनन्त है, वह बाहर आ जाती है। उसकी प्राचुर्य शक्ति की धारा है यह जगत्। जिसको कहते हैं Abundance—इतनी शक्ति, इतना ज्ञान, इतनी सत्ता, इतना सत्-चित्-आनन्द कि वह बाहर आ जाता है। वेदों में भी इसको कहा है—प्रवर्ग्य या ब्रह्मोद, ब्रह्म इतना अधिक हो गया कि उबल पड़ा। धे सब व्याख्याएँ हैं। ठीक हैं, क्योंकि लीला या खेल जो होता है, उसका कोई अलग लक्ष्य नहीं होता। वह स्वलक्ष्य है (Self contained) है। उसका महत्व अपने आप में है। लेकिन यह भी पूरी तरह से सन्तोषजनक उत्तर नहीं है। आखिर यह प्रवर्ग्य है, यह ब्रह्मोद है, यह प्राचुर्य है, यह आधिक्य है, लेकिन यह सब क्यों? यह सब किसलिये? दाता दयाल जी ने एक जगह बहुत सुन्दर लिखा है—कि वह परमतत्त्व सर्वाधार एक ऐसा जौहर है, ऐसा हीरा है, जिसकी किरणें निकलती हैं तो बिकास होता है, जब वह वापिस समेट लेता है तो यह समाप्त हो जाता है। फिर भी सवाल उठता है कि यह किरणों का फूटना क्यों? हम सब उसी के अंश हैं, वही हैं। लेकिन हम इस स्थिति में दुःख क्यों उठाते हैं?



इसका एक ही जवाब है। वह यह है कि हमारे जीवन के अनुभव से, यह सिद्ध होता है कि हम किसी वस्तु का सच्चा मूल्य उस समय समझते हैं जब हम उससे अलग होते हैं। आपके घर में एक बूढ़ा है अस्सी-नब्बे साल का, खाँस रहा है। आप समझते हो यह निकम्मा है पर उसकी वास्तविक कदर आप तब करते हो जब वह चला जाता है। मालिक ने हमें इस काल के जगत् में फेंक दिया है। हम बिछुड़े हैं अपने प्यारे प्रियतम से, यह प्रेममय जगत् प्रेम के अनुभव के लिए है। आपको विरह दिया गया है, ताकि इस जगत् में आकर, इस शरीर, मन और आत्मा के अन्दर होते हुए भी तड़पते रहें। हम तड़प रहे हैं, इसलिये कि हमें प्यारा मिला नहीं। यह तड़प तब तक समाप्त नहीं हो सकती, जब तक कि उसके साथ हमारा सीधा प्यार का सम्बन्ध नहीं जुड़ जाता। इस प्रेम और विरहमय जगत् में तपन करारी है। प्यास सबके अन्दर है। हर एक के अन्दर तड़प तो है, लेकिन पता नहीं है कि यह तड़प किस बात की है? इस शरीर को भी स्वस्थ रखना चाहिए। शरीर के लिए जितने भी आनन्द के साधन हम जुटा सकते हैं, जुटाने चाहिए। लेकिन सब सुख तथा आराम की सामग्री होने के बावजूद फिर भी मन को चैन नहीं। धन-दौलत, इज्जत और नाम के बावजूद भी चैन नहीं; क्योंकि आत्मा तो कुछ और पुकार कर रही है, मनुष्य की आत्मा तो कह रही है “मैं उस पूर्ण से बिछुड़ कर आई हूँ, पूर्ण में मिलूंगी; जब तक उस पूर्ण से सम्बन्ध नहीं जुड़ जाता तब तक तड़पती रहूंगी।” यह जवाब है इस शाश्वत प्रश्न का इस समय। सवाल तो पहिले भी थे। एक शिष्य गया गुरु के पास। प्रश्न किया कि, मैं कौन हूँ? मेरा आधार क्या है? परमात्मा क्या है? ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है? आत्मा और ब्रह्म का मिलाप कैसे हो? संयोग कैसे हो?



उपनिषद् काल भी गुरु-शिष्य का काल था। दाता दयाल जी ने सभी उपनिषदों पर लिखा है। “मानव पूर्ण से निकला है, इसलिये पूर्ण है।” ‘अमृतस्य पुत्रः’ जब बच्चा पैदा होता है, उसके कानों में यह मन्त्र फूँका जाता है। ‘शुद्धोऽसि, बृद्धोऽसि, निरंजनोऽसि’। पता नहीं अब यह रिवाज है या नहीं। इससे क्या होता है? जब ये शब्द बच्चे के कानों में कहे जाते हैं, तो उसके मन पर संस्कार की एक सील लग जाती है एक मुहर लग जाती है। जब बच्चे को यह कहा जाता है-

‘पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।’

‘तू पूर्ण से आया है, पूर्ण का पुत्र है। उस पूर्ण के इस छोटे पूर्ण को जब जान लगे कि मैं कौन हूँ? तब सब जगह उसे पूर्ण ही पूर्ण दिखाई देने लगेगा।

“जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।

कि हर शै में जलवा, तेरा हू-ब-हू है॥”

सब रूपों में उसी प्यारे का रूप दिखाई देने लगता है। ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ निश्चित रूप से सब कुछ ब्रह्म ही है। कोई भी जगह उससे खाली नहीं; कण-कण के अन्दर वह मौजूद है। जड़ पदार्थ में वह सो रहा है, वनस्पति में वह स्वप्न ले रहा है; पशु में वह चेतन है, मनुष्य में आत्म-चेतन है और सन्त में वह परमचेतन है। ये अवस्थाएँ (Degrees) हैं उसकी अभिव्यक्ति की। ठीक है, मालिक सब जगह मौजूद है। कुछ भी तो नहीं जो उसके बिना ठहर सके। उसीसे सब निकलता है, उसीमें विकसित होता है और उसीमें समाविष्ट हो जाता है। लेकिन यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह जगत् ही पूर्ण पुरम ब्रह्म है। नहीं यह तो सिर्फ उसका प्रवर्ग्य है, उसका ब्रह्मोद है। यह तो उसकी बूंद है, यह तो उसकी धार है। इसलिये वह परमतत्त्व,



जहाँ से हम आये हैं, जहाँ हम जा रहे हैं, उसके बारे में एक और बात कहना भी जरूरी है। क्या? यह कि कहीं आप यह न समझ बैठना कि यह जगत् ही ब्रह्म है। यह जगत् तो ब्रह्म पर आधारित है, लेकिन ब्रह्म जगत् पर आधारित नहीं है। ब्रह्म इससे ऊँचा और बड़ा है। इसलिये कहीं ब्रह्म को सिन्धु समझने की भूल न कर बैठना। ब्रह्म सिन्धु का अंश जरूर है, पर सिन्धु नहीं है। यही भूल वेदान्ती कर बैठते हैं। 'अहं ब्रह्माऽस्मि', 'मैं ब्रह्म हूँ।' यह ठीक नहीं, मैं तो ब्रह्म का अंश हूँ। 'अहं ब्रह्माऽस्मि' कहने से कोई सच्चमुच मालिक, परमतत्त्व नहीं हो जाता। हम तो मालिक के अंश हैं। इसलिये इसको समझाने के लिए एक दूसरा पक्ष है। शिक्षा में एक पक्ष होता है भावात्मक (Positive), दूसरा नकारात्मक (Negative)। यह चीज ऐसी है, यह ऐसी नहीं है। कहीं गलती न कर जाओ, भूल न कर बैठो, इसलिये (Process of elimination) परिहार प्रक्रिया भी बतानी पड़ती है, कि यह हटा दो, यह हटा दो, यह हटा दो; बाकी जो बच जाता है वही अभीष्ट है। यह Process of elimination यह (Negative) नकारात्मक जो तरीका है, कि यह चीज ऐसी नहीं है, ताकि इससे अलग उसको समझा जाये। इस 'नहीं है' को कहने के लिए यह शैली थी कि वह जो परमतत्त्व है, परमब्रह्म है, वह फूल नहीं है, पत्ती नहीं है, रंग नहीं है, रूप नहीं है, आकाश नहीं है। क्योंकि अगर परमतत्त्व फूल है तो पत्ती कहाँ से आई? अगर पत्ता है तो आकाश कहाँ से आया? अगर वह आकाश है तो प्रकाश कहाँ से आया? इसलिये किसी चीज को उसके समकक्ष नहीं माना जा सकता। यह कहना कि 'नेति-नेति-नेवि'—यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं, इसका मतलब यह नहीं कि वह कुछ नहीं है। इसका मतलब यह कि उसके मुकाबले या



बराबर की कोई चीज है ही नहीं। सब कुछ उसी में है, लेकिन वह सबसे परे है। इसलिये 'नेति-नेति' कहा जाता है। 'नेति-नेति' करने से कहीं भ्रम न हो जाय इससे एक कदम और आगे लिया जाता है। बड़ी कठिन सूक्ष्म बात समझा रहा हूँ। मूल भाषा से अमूर्त भाव समझा रहा हूँ। भाषा मूर्त है, वह अमूर्त है। भाषा सीमित है, वह असीम है। लेकिन एक मिसाल देना जरूरी है। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं; आखिर ठहराव कहाँ है? ठहराव जहाँ पर होगा, वह आधार होगा, जिस पर ठहरने के बाद सब प्रकार की चंचलता समाप्त हो जाती है। ठहराव कहाँ है? ठहराव भी तुम्हारे अन्तर में है। पहिले यह समझना है कि यह जो मैं "मैं" कह रहा हूँ, वह मेरा असली "मैं" है, वह क्या है? उसका कोई सुबूत है? दुनिया सुबूत मांगती है। सुबूत दिया जा सकता है। उसका सुबूत है निश्चितता। उसका सुबूत है कि जिस चीज के समझने के लिए किसी भी प्रमाण की जरूरत नहीं है, जो स्वतः प्रमाण है, कैसे? आप सब चीज को अनिश्चित मान कर चलो। कहीं पहुँचोगे जहाँ निश्चितता हो जायेगी। हिन्दी में बोल रहा हूँ क्योंकि यू० पी० में हिन्दी समझते हैं लोग। पंजाब में गुलाबी हिन्दी बोलनी पड़ती है। वहाँ हिन्दी समझ नहीं पाते लोग। तो अनिश्चितता से चलिये। मान लिया कि मैं शरीर को कहता हूँ कि यह मेरा शरीर है। अरे भाई शरीर तो छिन्न-भिन्न हो जायेगा। शरीर पर सन्देह किया जा सकता है। शरीर अनिश्चित है। मन भी अनिश्चित है। यह पृथ्वी भी अनिश्चित है। प्रकाश भी अनिश्चित है। आज सूर्य उदय हो रहा है, कल न हो। सन्देह किया जा सकता है। हर चीज पर सन्देह किया जा सकता है। सूर्य है या नहीं? सन्देह किया जा सकता है। प्रकाश है या नहीं? सन्देह है। आकाश है या नहीं?



सन्देह किया जा सकता है। सन्देह है मुझे, यह सन्देह है, यह सन्देह है, यह सन्देह है। आत्मा में सन्देह, परमात्मा में सन्देह, सब में सन्देह। एक बात में सन्देह नहीं है कि मैं सन्देह कर रहा हूँ। यह तो निश्चित है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका हूँ कि सब चीज अनिश्चित है। सब चीज पर सन्देह है, लेकिन इस पर तो सन्देह नहीं है कि मैं सन्देह कर रहा हूँ। इस पर सन्देह नहीं किया जा सकता। लोग कहते हैं—आत्मा दिखाओ। आत्मा को फूल की तरह दिखाओ। यह फूल तो नहीं है। इस पर सन्देह किया जा सकता है। लेकिन क्या आप अपने आप पर कभी सन्देह कर सकते हो? सन्देह करना ही प्रमाण देता है कि आपके अन्दर कोई चीज है। यह एक नुक्ता है। पहिले तो उसको यह बताया कि यह सब तुम्हीं तो हो। फिर कहा कि नहीं, यह जगत् भी तो कुछ नहीं। वह तो इससे ऊँचा है। न वह आकाश है, न वह पाताल है, न प्रमाण है, न अप्रमाण है, न शक्ति है, न अन्धकार है, न प्रकाश है। नेति-नेति-नेति। कहीं वह शिष्य, इस नेति-नेति के भ्रम में यह न समझ ले कि वह तो कुछ भी नहीं है, पहिले तो कहा कि ऐसा है, फिर कहा ऐसा नहीं है—नहीं है—नहीं है। फिर एकदम उसे कहा—“तत्त्वमसि”—“अरे, वह तुम हो।” क्योंकि तुम अपने आप पर सन्देह नहीं कर सकते। इसलिये मान लो कि वह भी तुम्हारी तरह निश्चित है। ऐसा ज्ञान देने के बाद उस शिष्य को कहा “अब तेरी समझ में आ गया कि तू वह है। तू है यह निश्चय है, इसमें सन्देह नहीं है। सवाल यह था कि मैं कौन हूँ? आत्मा क्या है? आत्मा द्रष्टा है, देखने वाला है। वह देखा नहीं जा सकता; लेकिन उसके बिना देख नहीं सकते। वह सुना नहीं जा सकता; सुनना



उसका एक खासा है। इतना निश्चित है। जब यह बता दिया कि वह ऐसा है, ऐसा नहीं है फिर एकदम कहा— “तत्त्वम्असि” अरे, तुम वह हो। अपने आप पर क्या सन्देह करना। वह जागृत हो गया। ऐसा बताने के बाद उसको कहा, “बात समझ में आ गई?” सवाल-जवाब क्रिया, भ्रम दूर कर दिखे बुद्धि के तर्क-वितर्क से। बात समझ में आ गई, तीसरे कदम पर। पहिला कदम था बताना। दूसरा कदम था उसमें बैठकर मनन करना। तीसरा कदम था निदिध्यासन। फिर उसको कहा— अब जाओ, जाकर खुद अनुभव कर लो निदिध्यासन से, ध्यान-समाधि से खुद आत्मसाक्षात्कार कर लो। वह शिष्य गया और बारह साल के बाद फिर आया। भ्रमण करता हुआ गुरु के पास पहुँचा। गुरु ने पूछा— “श्यों भाई कुछ ज्ञान हुआ?” वह बोला— “हाँ महाराज, मैंने देख लिया, आपकी बात सही है। जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ उसी का नजारा है—फूलों में, पत्तों में, आकाश में, नदियों में, सब जगह वही है। लोगों के अन्दर भी वही है। आधा घण्टा तक उसमें अपना व्याख्यान दिया। तब गुरु ने कहा—बेटे! अभी तक तेरी समझ में नहीं आई बात। बारह साल और जाकर साधना कर।” वह चला गया, और बारह साल बाद जब वह फिर आया तो बोला, “गुरु जी मैंने बेकार उतनी लम्बी चौड़ी व्याख्या दी थी। वह तो सब जगह मौजूद है। और सबसे परे भी है। हमारे अन्दर भी है, बाहर भी है।” गुरु ने कहा, “भाई बात तो ठीक कही तूने लेकिन पूरी बात अभी भी समझ में नहीं आई। बारह साल और जाकर साधना कर।” शिष्य चला गया। फिर बारह साल के बाद जब वह आया और गुरु को नमस्कार करके चुपचाप बैठ गया। न शिष्य बोला, न गुरु बोला। पाँच मिनट बिलकुल शान्ति रही।



तब गुरु जी बोले—“अब तेरी समझ में आ गया। असलियत क्या है। जहाँ सब दलील खत्म हो जाती है और अनुभव यह बना देता है :-

बूंद पानी में मिला, दरियां बना, क्या जुस्तजू।

जात में जब मिल गया, फिर वह करे क्यों गुफ्तगू ॥

यह बात थी छत्तीस साल की, लेगिन आजकल का युग—मैं कह रहा था कि यह तुरन्त (Instent) युग है। Instent coffee, instent breakfast, हर चीज तुरन्त मिलनी चाहिए। रूहानियत में भी, अकल में भी आध देखें जितना साहित्य है हर एक विषय के अन्दर जितनी सामग्री (material) मिल रही है कम्प्यूटर के जरिये, पहिले कभी नहीं मिलती थी। कम्प्यूटर के जरिये एक मिनट में आप शेक्सपियर के बारे में जानना चाहते हैं तो बटन दवा दीजिये आपका सारी जानकारी मिल जायेगी। तो इस युग के लिए सन्त अवतार है। दाता दयाल जी अवतार हुए, परम दयाल जी अवतार हुए। क्योंकि यह सहज-युग है जिसमें 'नाम' को आधार बताया है। नाम की भक्ति से सहज में ही उस परमतत्त्व का ज्ञान, परमतत्त्व की अनुभूति होती है, इसलिये सन्तमत आया। राधास्वामी नाम में ही वह ताकत है, वह चीज है जिसको पाने के लिए मनु-शतरूपा ने हजारों साल तपस्या की। 'राधा' नाम है आत्मा का, 'स्वामी' नाम है परमात्मा का। 'राधा' धारा है, जगत् है, व्यापक सौन्दर्य है, सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् है। यह सारा ही जगत् सत्यम् है। लेकिन जहाँ से यह जगत् निकला, जो इसका आधार है, अनन्त है, अनादि है, अनाम है, वह अविनाशी तत्त्व है। जगत् परिवर्तनशील है, वह परिवर्तनशील नहीं है। यह चल है, वह अचल है। यह गतिमान् है,



वह स्थिर-स्थाणु है। वह परमतत्त्व स्वामी है, वह मालिक है। राधास्वामी का यह मतलब है। यह कोई फ़िर्का नहीं है। राधास्वामी किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। दाता दयाल जो ने अपने हर शब्द में 'राधास्वामी' शब्द का प्रयोग किया है। आप देख लो उसका मतलब है ध्रुव, अचल, सर्वाधार, परमतत्त्व, जो अवतार लेता है बारम्बार और ज्ञान देता है। वह ज्ञानदाता है। राधास्वामी अचल मुकामी। राधास्वामी का मतलब ही आपका लोक और परलोक दोनों हैं। राधा है लोक का सुधारना और स्वामी है परलोक का सुधारना। राधास्वामी दोनों का तादात्म्य (Identification) है। राधास्वामी मानिक का नाम भी है जैसे सीताराम है, राधेश्याम है। स्वामी जो महाराज ने एक जगह पर कहा है—“राधा-राधा है, स्वामी-कृष्ण कन्हाई है।” इसलिये मैंने राधास्वामी से आरम्भ किया। सन्तमत में भी वही सब कुछ है जो उपनिषद्-काल में भी था। श्रवण, मनन, निदिध्यासन। पहिले सुनना, अर्थात् सत्संग; फिर मनन, यानि सद्गुरु से प्रश्न करना। सत्संग-श्रवण, सद्गुरु-मनन और सतनाम— उसका अनुभव करना, उसमें विलीन हो जाना। अनुभव के बाद फिर कहना कि यही गुरु ने कहा था :—

‘जब तक न देखो अपने नैना, कभी न मानो गुरु के बैना।’

यह बात सही है। इसका यह मतलब नहीं लगाना चाहिए कि आप गुरु से बड़े हो गये; शायद गुरु ग़लत हो। इसका मतलब है कि जब तक तुम निदिध्यासन के जरिये खुद अपने अनुभव में नहीं उतरोगे, सब तक तुम्हें गुरु की बात की सच्चाई का पता नहीं लग सकता। जब अनुभव में कर लोगे, तो उस शिष्य की तरह जाकर गुरु को नमस्कार ही करोगे। क्योंकि वह सत्य है। कुछ लोग ‘कभी न मानो



गुरु के बैना' का अर्थ गलत समझते हैं। वे सोचते हैं कि गुरु ने कह दिया, पर देखा जायेगा। जब मैं अनुभव करूँगा तब मानूँगा। गुरु को भी एक तरफ फेंक दिया। यह मतलब नहीं है इसका। सन्तमत की सबसे बड़ी देन सत्संग है। सत्संग ज्ञान पाने का सबसे सहज-सुगम तरीका है। क्योंकि वह जमाना तो अब रहा नहीं कि आश्रम में चौबहू साल जाकर रहो। उसको सुगम बनाने के लिए इस समय में सत्संग का तरीका चलाया। सत्संग क्या है ?

‘सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा।’

‘सेवत सादर समन कलेसा ॥’

सत्संग केवल सतपुरुष का। सत्संग उसका नहीं जो कितना पढ़-पढ़ कर कितना ज्ञान को उगल दे गिरे। सत्संग सबके लिए सुलभ है। चाहे वह किसी भी उमर का क्यों न हो। कोई भी आध्यात्मिक ज्ञान ऐसा नहीं जिसके लिए यह जरूरी हो कि आप बूढ़े हो कर करो। लोग कहते हैं कि भगवद्गीता संन्यासवाद है। नहीं। अर्जुन तो उठ कर भाग रहा था, उसे भगवान् ने कहा “नहीं, भागो नहीं, अपना कर्म डट कर करो।” गीता तो सहज समाधि, सहज योग और सन्तमत का एक खास नमूना है। यह सब के लिए है, सभी इसके अधिकारी हैं। सनातन धर्म में व्रत रखना, एकादशी, पूर्णमासी आदि का व्रत रखने का मतलब स्वास्थ्य को ठीक रखना है। लेकिन अगर आप कहें कि एकादशी या पूर्णिमा का ही व्रत रखने और दान देने से मालिक मिल जाता है, ऐसी बात नहीं है।

‘सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा।’

वह मालिक सबके लिए और हर समय सुलभ है।

‘स दा दिवाली सन्त घर, आठों पहर आनन्द।’



यह मतलब है सत्संग का। यह जरूरी नहीं कि आपको काशी या हरिद्वार में ही मुक्ति मिलेगी। कबीर साहिब ने इसको अप्रमाणित कर दिया कि काशी में शरीर त्यागने से बेकुण्ठ मिलता है और मगहर में मरने से आदमी नरक में जाता है। उन्होंने तो मगहर में जाकर अपने प्राण त्बागे।

‘जो कबिरा काशी मरे, तो रामहिं कौन निहोर।’ (कबीर)

काशी में मरने से तो मुक्ति सबको मिलती है। वे कहते हैं “मैं तो तेरा प्रेमी हूँ मुझे तो यहीं मुक्ति मिलना चाहिए।” उनके लिए राम खुद मगहर में प्रकट होते हैं और कबीर सशरीर गुप्त हो जाते हैं। परम दयाल जो महाराज ने कहाँ जाकर शरीर छोड़ा? अमेरिका में। मर्सी हस्पताल, दया के हस्पताल में। वह जितने दिन वहाँ रहे उस हस्पताल के मरीज आ-आ कर ठीक होकर चले जाते थे। उनकी रेडियेशन का इतना भारी असर पड़ा उन पर। सब देशों में वह मालिक है। सारा जगत् उसी का ही तो है। अरे काल भी तो दयाल का है! नहीं तो फिर काल कहाँ से आया? काल में ही तुमको दयाल मिलेगा। काल नहीं है, तो दयाल मिल ही नहीं सकता। मानवशरीर इतना दुर्लभ और उत्तम है कि देवता भी इसके लिए लालायित रहते हैं। आप गृहस्थ में हो तो गृहस्थ का आनन्द भोगो। गृहस्थ में मालिक को देखो। पहिले मनुष्य से प्रेम करो। मनुष्य साक्षात् ईश्वर का नमूना है। ईश्वर को देखना है तो मनुष्य में देखो :—

‘सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा।

सेवत सादर समन कलेसा ॥’

महाराज जी का शरीर अमेरिका से यहाँ आया। एक बार उन्होंने मुझसे पूछा था अमेरिका में, “अगर मैं यहाँ मर



जाऊँ तो मेरा शरीर ले जाने में क्या कठिनाई आयेगी ? यह सब उनकी लीला है। और भी कई सन्त मरे हैं बाहर, योगानन्द भी मरे, लेकिन वहीं के वहीं रह गये। ऐसी मिसाल अब तक सिर्फ एक ही है कि कोई सन्त प्राण अमेरिका में छोड़े और उसका शरीर यहाँ आये। और शरीर भी इनका दिव्य कि जब तक समाधि में रहे उतनी काल्पित, उतना तेज मैंने जीवन में नहीं देखा जो दिनोदिन बढ़ता ही चला गया। मानवता मन्दिर में जब अन्तिम संस्कार होने लगा, तो अचानक एक बादल आया और वर्षा हो गई। और बादल आया ही सिर्फ मानवता मन्दिर पर। तो कहने का मतलब यह है कि जो परमतत्त्व में विलीन हो गया उसके लिए सब देश बराबर हैं। उसी तरह सत्संग भी—

‘सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा ।’

यह नहीं कि पंडित जी पूर्णमासी के दिन ही आयेंगे तो कथा सुनायेंगे। सत्संग के लाभ के लिए शर्त है—

‘सेवत सादर समन कलेसा ।’ आदर से सत्संग सुनो।

दुःख-क्लेश तो कई तरह के हैं, पर इन दुःखों से बचने का उपाय सिर्फ एक है। चाहे शरीर का दुःख हो, चाहे मन का दुःख हो, या मृत्यु का भय हो, ‘सेवत सादर’—आदर के साथ, अदब के साथ सत्संग में बैठने से आपके सभी क्लेश-दुःख समाप्त हो जायेंगे। उनका शमन हो जायेगा, दमन नहीं। दमन का मतलब जबरदस्ती। यह तो सहज मार्ग है। बैठकर तपस्या करो, आसन लगाओ, शीर्षासन करो, इन सबकी कोई जरूरत नहीं। ज्यों दिल से आदर किया, ज्यों झुके नहीं आप कि आपका सब काम बन गया। ‘सेवत सादर समन कलेसा ।’ आदर के साथ सत्संग में बैठने से नाम की प्राप्ति होती है और उसके प्राप्त होने से बाकी जो काम



हैं अपने बाप ही हो जाते हैं। सत्संग में आने से आपको इस बात का पता चल जाता है कि हम कहाँ से आये हैं? कहाँ जायेंगे? इस शब्द में यह सारी व्याख्या है। इस शब्द के आधार पर मैं आपको थोड़ी व्याख्या दूँगा :—

आँखों का तारा सबका सहारा, हितचित्त से तू प्यारा है।

निर्मल शब्द बुद्ध हितकारी, सुख सम्पत्ति परिवारा है॥

आँखों का तारा कौन होता है? नवजात शिशु, माँ-बाप को प्यारा होता है। हमें बच्चे प्यारे हैं, पत्नी प्यारी है, पोता प्यारा है। ये हमें क्यों प्यारे हैं? प्यारे इसलिये कि ये सब आत्मा हैं, आँखों का तारा तो वही है, जो हर एक के अन्दर मौजूद है। पति पत्नी को उसकी आत्मा के लिए प्यार करता है। आत्मा तुम्हारे शरीर का सहारा, मन का सहारा है और आत्मा जो है वह उसका अंश है जो आँखों का तारा है। सबका सहारा है। तुम समझ रहे हो कि तुम प्यार करते समय शरीर को प्यार करते हो। नहीं तुम प्यार इसलिये कर रहे हो कि वह सर्वाधार जो तुम्हारे अन्दर है वह उसके अन्दर भी है। सबके अन्दर वही सर्वाधार मौजूद है। 'हितचित्त से तू प्यारा है।' अरे मेरे प्यारे! मैं भूल गया था कि मैं तेरे से निकला था, तेरे से आया था, तू सबके अन्दर मौजूद है। मैं तो उनको शरीर मान बैठा। मैं तो उनको मन मान बैठा। नतीजा यह हुआ कि मैं उन पर क्रोध कर बैठा। मैंने यह नहीं देखा कि अमरी आँखों का तारा, तो उसका शरीर नहीं, मन नहीं, चाहे वो मूँ पर क्रोध करे। मेरी पत्नी को क्रोध आ जाता है, क्योंकि वह रक्तचाप (Blood-pressure) की मरीज है। प्यार तो इसलिये है कि उसके अन्दर वह मौजूद है जो 'आँखों का तारा, सबका सहारा, हितचित्त से प्यारा है।' हम भूल कर हितचित्त कर बैठते



हैं मकानों से, टेलीविजन से, मोटरकार से, पैसे से मोह जगा लेते हैं लेकिन हमारा हितचित तो उस प्यारे से होना चाहिए :—

‘निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी, सुख सम्पत्ति परिवारा है।’

हम सुख-सम्पत्ति ढूँढते हैं भौतिक जगत् में। यह होना चाहिए, वह होना चाहिए, लेकिन असल में निर्मल है— जिसके अन्दर को मल नहीं है, जो शुद्ध है, वह न शरीर है, न मन है, न आत्मा है, न प्रकाश है। वह बुद्ध है, हितकारी है। असली हित उससे ही है। जब उमकी या लिया, तो आपकी आत्मा भी चमक उठेगी, मन भी शक्तियों को जो जायेगा और आपका शरीर भी स्वस्थ रहेगा। “Seek ye the Kingdom of God first, All other things shall be added.” अरे पहले तुम उस परमतत्त्व परमात्मा की उम बादशाहत को ढूँढो, उस दयाल की तरफ ध्यान दो। बाकी सब कुछ तो अपने आप हाथ आ जाता है। इसीलिये कहते हैं :—

‘मुक्ति की नहीं चाह मन में, भक्ति प्यारी लाग।

राधास्वामी को दया से, भाग्य पूरन जाग ॥’

राधास्वामी वह परमतत्त्व है। उसकी दया हो गई, वह हमें झिल गया, बाकी सब चीजें अपने आप आ गई :—

घट टट वासी आनन्द रासी, अविनाशी मंगलकारी।

रोम रोम में रमता जोगी, रोग सोग से न्यारा है ॥

परमतत्त्व सबके अन्दर मौजूद है। हमारा प्रेम जब भी किसी से होता है तो आत्मा के आकर्षण के कारण ही होता है। हम समझते हैं हमें उसके शरीर से प्रेम है। परन्तु शरीर जबाव दे देता है तो उससे नफरत करोगे क्या? परमतत्त्व अविनाशी है। उसका कभी नाश होता नहीं। शरीर का नाश



हो सकता है, मन बदल सकता है, आत्मा भी आवागमन के चक्र में है। लेकिन अविनाशी जो है, वह नित्य है और मंगल-कारो है। वहाँ अमंगल का सवाल ही नहीं होता। जो सन्त सद्गुरु इस अनुभव के बाद सत्संग देता है, उसके सत्संग में मंगल होता है।

‘रोम-रोम में रमता जोगी, रोग-सोग से न्यारा है।’

हमारे कण-कण, रोम-रोम के अन्दर उसी की ज्योति है। जब यह अनुभव हो जाता है, तो फिर शरीर के रोग, मन के शोक सब चले जाते हैं:—

‘गुणातीत गोविन्द मुरारी, पुरुषोत्तम करुणा सागर।’

गुणातीत—तीनों गुणों से परे। गुण तो सभी उसीसे निकलें हैं। गुणातीत को पाने से गुण तो अपने आप ही आ जाते हैं। सच्चिदानन्द तो गुणमय है, पर वह गुणातीत है। वह गुणों का आधार है, गुणों का स्रोत है, गुणों को खान है। ‘गुणातीत गोविन्द मुरारी’—दाता दयाल कह रहे हैं। आप भगवान् कृष्ण को भी अपना लक्ष्य मान कर वहाँ पहुँच सकते हैं। बशर्ते कि गोविन्द का मतलब समझते हों। गो का मतलब जगत् है, उसी कृष्ण की मूर्ति मन में रखो, कोई बान नहीं। लेकिन उसको मनुष्य नहीं मानना उसको परम-सत्त्व का साक्षात् अवतार मानो।

‘गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अन्ध।

दुःखी होयें संसार में, आगे यम का फंद ॥’

गुरु को सद्गुरु को मनुष्य मानने वाले शिष्यों का उद्धार नहीं हो सकता। जो लोग गुरु के निकट रहते हैं वे तो समझते हैं कि गुरु तो खाना भी खाते हैं, पाना भी पीते हैं और उन्हें बीमारी भी होती है। फिर यह गुरु क्या हुए? यह तो हम से भी गये-बीते हैं। जितने नज़दीक रहने वाले



होते हैं वो गुरु से कभी कुछ नहीं प्राप्त कर सकते, क्योंकि वे तो उनको चाचा, ताया, दादा और नाना समझते हैं। लेकिन असल में तो गुरु परमतत्त्व है, उसे परमतत्त्व ही मानना चाहिए। 'गो' का मतलब है यह जगत्—चलने-बाला जगत्। लेकिन गो के साथ बिन्दु लगा हुआ है—'गोविन्द'। यह समझने वाली बात है। गो तो 'राधा' है, बिन्दु 'स्वामी' है। गो काल है, बिन्दु दयाल है। गुणातीत गोविन्द काल में भी है, जगत् में भी है और जगत् से बाहर भी है। जो आपके अहंकाररूपी मूल को नष्ट कर देता है :—

'गुणातीत गोविन्द मुरारी, पुरुषोत्तम करुणा सागर।'

पुरुषोत्तम आत्मा से परे परमतत्त्व का नाम है, जो करुणामय है, करुणा का अनन्त भण्डार है। उसकी करुणा अपार है, उसकी दया अपने आप बहती है। जब उसकी तरफ आपका ध्यान गया और उससे आपने लौ लगा ली तो वाकी चीजें सहज ही अपने आप होती चली जायेंगी।

'जन मन रंजन दोष विभञ्जन, प्रेम प्रीति भंडारा है।'

वह जनमनरंजन सबको आनन्द देने वाला है। भगवान् कृष्ण क्या कोई लँगोटीबारी थे? पीताम्बर धारण किये, गहने पहने हुए, अरे यह जगत् भी आनन्दमय है। फिर दोषविभञ्जन—कहीं कोई दोष है, तो उसको दूर कर देने वाला है। उसने प्रेम के लिए यह सारा जगत् बनाया। ताकि तुम प्रेम का अनुभव करो और मालिक के विरह का अनुभव करके फिर मालिक से मिलने के लिए बेताब हो जाओ। जब पूरी तरह उसके प्रेम में दीवाने हो जाओगे, तब वह अपने आप मिल जायेगा।

'नाम लेत भव सिन्धु सुखावे, ध्यान घरत कलमल जावे।'

नाम लेने का मतलब मुँह से नाम जपना नहीं है,



ब्रह्म नाम में खुद घुलमिल जाना है। सुरत-शब्द योग में आप बड़ी आसानी से शब्द को प्रकट कर लेते हैं। मीरा ने पत्थर की मूर्ति को परमतत्त्व मानकर, उसकी भक्ति को। यह सन्तमत्त है। मीरा के मुकाबले का सन्त बताओ मुझे। मीरा ने कृष्ण की भक्ति को साध लिया। “गिरधर गोपाल ही मेरा पति, मेरा सर्वस्व है।” इस प्रेम को ऐसा साधा—ऐसा साधा कि वह परमतत्त्व में विलीन हो गई। सशरीर गुप्त हो गई। मीरा कबीर साहिब से कम थी क्या? तो नाम लेने का मतलब नाम को इतना साधना—इतना साधना है कि सब जगह वही दिखाई देने लगे। भवसिन्धु अपने आप खत्म हो गया, शरीर, मन, आत्मा से वह ऊपर चली जायेगी। उस परमतत्त्व का ध्यान धरो, वह मन को शुद्ध कर देगा और वातावरण के सारे प्रदूषणों को हटा देगा :—

‘भव दुःख भेटन दोष नसावन, भक्ति रीति का सारा है।’

हम ऐसे मालिक की पूजा करते हैं और उसको प्यार करते हैं जो हर प्रकार के द्वन्द्वात्मक जगत् से हटा कर हमें भक्ति के पन्थ में लगा देता है। भक्त का मतलब है जो विभक्त नहीं है; उस मालिक से मिलकर एक हो गया है। यही भक्तिरीति का सारांश है, उसका निचोड़ है, उसका इत्र है :—

‘करम धरम वैराग ज्ञान तत, विज्ञानी पूरा सच्चा।
हे दयाल करो दृष्टि दया की, हृदय दुःखो हमारा है॥’

कर्म, धर्म, वैराग्य और ज्ञानतत्त्व यह सब कुछ ठीक है लेकिन कर्म के रास्ते पर चलना कठिन है। धर्म में भी अनेक मत-मतान्तर हैं, हाँ एक ही रास्ता सबसे सरल है, वह रास्ता सत्संग का है :—

‘परहित सरिस धर्म नहि भाई,
परपीड़ा सम नहि अधमाई।’



परहित का पालन करने से, वैराग्य और ज्ञानतत्त्व अपने आप सहज ही मिल जाते हैं। जब उस मालिक से लौ लगा ली तो और कुछ करने की जरूरत नहीं। उस मालिक से विनती करो—“हे दयाल, तुम्हीं सब कुछ हो। सबका आधार हो। दया की दृष्टि करो। हमारा हृदय दुःखी है।”

अभी मैंने आपको बताया कि वह मंगलमय है। फिर दुःखी रहने का तो कोई कारण ही नहीं है। परन्तु हम दुःखी रहते हैं। इसीलिये सत्संग कराया जाता है। हृदय क्यों दुःखी है? हृदय इसलिये दुःखी नहीं है कि आपको एक मंगलकारी सत्संग दिया जाय। हृदय दुःखी इसलिये है कि हम यह भूल गये हैं कि हम परमतत्त्व थे। असल में हम यहाँ जाकर उसके बिरह में दुःखी हैं, तड़प रहे हैं। इसी तड़प के कारण ही ‘हृदय दुःखी हमारा है’।

‘तू तो थी सतपुरुष की अंशो ;
गोत लजाया, शर्म न आई।’

क्यों? क्या भूल गये? अरे तुम तो शेर हो। तुम अपने रूप को भूल गये। तुम अपने आपको बकरी समझ बैठे हो। दुःखी उसी का हृदय होगा जो जानता है कि हम पूर्ण थे और पूर्ण से अलग हो गये, इसलिये दुःखी हुए और तब तक दुःखी रहेंगे, जब तक उससे हमारा मिलाप नहीं होता।

‘दिल वो दिल है जो हर घड़ी हर पल,
याद - ए - जाना में बेकरार रहे ।
आँख वो आँख है जो शामो सहर,
गमे फुर्कत में अशकवार रहे।’

जो मालिक के लिए नहीं रोता वह प्रेमी इन्सान नहीं है।



अब तो शरन में आन पड़ा हूँ, एक आश तेरी मुझको ।
राधास्वामी चरन से प्रीत रहे नित, वही धुर इष्ट सहारा है ।

अब तो मालिक के शरण में आन पड़ा हूँ अब दुनिया
की सब चीजें जो पहिले अच्छी लगती थीं, अब अच्छी नहीं
लगतीं । अब मैं चाहता हूँ कि मेरा यह मन आपके प्रकाशमय
चरणों में लीन हो जाय क्योंकि प्रकाशमय चरण ही धुर
इष्ट तक पहुँचने का सहारा है । मैं सब में मालिक को
देखूँ । प्रकाशमय चरण का मतलब :—

‘जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ।

कि हर शं में जलवा तेरा हू-ब-हू है ।

अब मैं तेरी चरण-शरण में आ गया, अब तो मेरी
यह स्थिति है कि सबके अन्दर तेरा ही रूप दिखाई देता है
और सब कुछ तेरे ही अन्दर दिखाई देता है ।

‘जो सबको तुम्हीं में, तुम्हें सब में देखे ;

वो आशिक है तेरा, और माशुक तू है ।’

अब मैं यही चाहता हूँ कि मेरी यही हालत सदा बनी
रहे । तेरे सिवा कुछ भी दिखाई न दे :—

यो माम् पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति ।

अहं तं न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्वति ॥

भगवान् कृष्ण ने खुद कह दिया अर्जुन से कि जो मुझे
ही सब जगह देखता है, पत्नी को प्यार करता है तो मेरे ही
लिए करता है । बात जहाँ से शुरू हुई थी, अन्त में फिर
वहीं पर आ गये । ऐसा सत्संग है कि शुरू भी इसी बात से
हुआ और समाप्त भी इसी बात पर हो रहा है कि सब जगह
वही दिखाई देता है । ‘यो माम् पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि
पश्यति ।’ और सभी को मेरे में देखता है । ‘अहं तं न
प्रणश्यामि’, बाँह पकड़ ली, अब नहीं छोड़ूँगा । अलग नहीं



करूंगा। वह मेरे से अलग कभी नहीं होता। यह प्रार्थना की गई है कि यह भक्ति की, समदृष्टि की, अभेद की, यह ब्रह्म-दृष्टि की जो स्थिति है, सब जगह तुम्हें देखूं। हे मेरे मालिक, यह दशा सदा मेरी बनी रहे। यही मेरा सहारा है।

‘सूली ऊपर सेज पिया की,
किस बिधि मिलना होय।’

सूली का क्या मतलब है? जब किसी को सूली पर लटकाने हैं तो पैर के नोचे का सहारा हटा लेते हैं। सूली का मतलब है सारे सहारे छोड़ दो।

‘कष्टी खुदा पे छोड़ दो, लंगर को तोड़ दो।’
उसके सिवा दूसरा न कोई है, न किसी का सहारा लो।
सबको राधास्वामी !

शोक समाचार

सभी सत्संगी जन को अत्यन्त दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि इलाहाबाद निवासी श्री अमर नाथ कुन्द्रा जी की धर्मपत्नी श्रीमती अशोक रानी कुन्द्रा का दिल का दौरा पड़ने से 20-9-89 को दिल्ली में निधन हो गया।

मानव मन्दिर परिवार श्रीमती अशोक रानी कुन्द्रा के निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करते हुए परम पिता राधा-स्वामी दयाल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति तथा शोकाकुल परिवार को इस असह्य दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

जनरल सेक्रेटरी



❀ मासिक सन्देश ❀

परमसन्त सद्गुरु हज़ूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,
मेरे परमप्रिय सत्संगियो !
राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको सत्संग दीरे के सम्बन्ध में 24 जुलाई 1989 सायंकाल तक की सूचना दी थी। उसी दिन मुझे 6 बजे हवाई अड्डे से जयपुर से बम्बई जाना था। जब हम हवाई अड्डे पर पहुँचे, तो हमें पता चला कि हमारी उड़ान तीन घण्टे देरी से जाने वाली थी। उसका कारण यह था कि जिस उड़ान को रोज़ाना की भाँति बम्बई से न्यू देहली पहुँच कर सायंकाल जयपुर के रास्ते से बम्बई जाना था, वह उड़ान बम्बई में मौसम की सख्त खराबी के कारण चली ही नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में देहली से एक नई उड़ान जयपुर के रास्ते से तीन घण्टे देरी से चलाई गई। भारतीय वायुसेवा ने जयपुर के हवाई अड्डे पर यह घोषित कर दिया था कि बम्बई की यह उड़ान मौसम की खराबी के कारण ही अहमदाबाद में रोक दी जायेगी। उन सभी लोगों ने जो मेरे साथ हवाई अड्डे पर आये थे, अनुरोध किया कि मैं बम्बई जाना स्थगित कर दूँ किन्तु मेरा मन नहीं चाहा। मैं बम्बई के सत्संगियों की



आशाओं पर पानी नहीं फेरना चाहता था। मैंने यह बेहतर समझा कि अहमदाबाद जाना ठीक रहेगा, क्योंकि मुझे आशा थी कि वहाँ पहुँच कर हमारी उड़ान को बम्बई जाने का अवसर दे दिया जायेगा। जयपुर और अहमदाबाद के बीच उड़ान के कर्मचारियों को तनिकमात्र भी विश्वास नहीं था कि हमारी उड़ान अहमदाबाद से बम्बई जायेगी।

हमारा हवाई जहाज अहमदाबाद हवाई अड्डे पर सुरक्षित उतरा। यहाँ पर हमें तीन घण्टे तक अनिश्चितता की हालत में इन्तज़ार करनी पड़ी। बम्बई से बार-बार सन्देश आ रहे थे कि मौसम की हालत अत्यन्त खराब है और बम्बई भारी वर्षा और तूफान के कारण विश्व से कट गया है। इसके बावजूद भी मैंने उड़ान की अतिथि सत्कार करने वाली महिला से कहा कि हमारी उड़ान अवश्य बम्बई जायेगी। मेरे इस कथन के कुछ ही मिनटों के बाद हमारी उड़ान के चालक को आज्ञा मिल गई कि हम बम्बई जा सकते हैं। हमारा वायुयान बम्बई के लिए रवाना हो गया। यद्यपि हमें हवाई अड्डे पर उतरने के लिए आधे घण्टे तक आकाश में ही रहना पड़ा और हम बम्बई के चारों ओर चक्कर लगाते रहे, तथापि अन्त में हम हवाई अड्डे के भीगे हुए और बाढ़ में आये हुए मैदान पर सुरक्षित उतर गये। मैंने आपको यह घटना इसलिये नहीं बताई कि मेरी विचारशक्ति के कारण यह अभूतपूर्व चमत्कारी अनुभव हुआ। वास्तव में बम्बई के सत्संगियों के प्रेम और उनकी तड़प के कारण प्रकृति को ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करनी पड़ीं कि हमारी उड़ान बम्बई पहुँच गई। मेरे प्यारे सत्संगियो! तुम्हारे प्रेम और तुम्हारे अगाध विश्वास के कारण मुझे मजबूर होकर सत्संग देने के लिए आना ही पड़ता है। यदि अनिवार्य



परिस्थितियों के कारण मैं आप तक नहीं पहुँच सकता, उसमें भी भविष्य के लिए भलाई ही होती है। 1985 में मुझे सख्त बीमारी के कारण और भयानक फ्लू के कारण यू० पी० का दौरा रद्द करना पड़ा। आचार्य के० पी० वर्मा, आचार्य शब्दानन्द, आचार्य K.M. श्रीवास्तव और कृष्ण मोहन तिवारी ने यह निश्चय किया कि मुझे किसी एकान्त स्थान पर इलाज और विश्राम के लिए जाना चाहिए। इसलिये मैं हवाई जहाज से देहली होता हुआ जयपुर पहुँचा। जयपुर के हवाई अड्डे पर मुझे इतनी कमजोरी महसूस हुई कि मैं हवाई जहाज की सीढ़ियों से भी नहीं उतर सकता था। मेरे प्यारे श्री अर्जुन लाल छापरवाल अपनी गाड़ी लेकर हवाई अड्डे पर पहुँच गये और मुझे बहुत आराम से अपने घर ले गये। दूसरे दिन मेरा बहुत ही प्यारा बेटा सुमेर सिंह अजमेर से अपनी गाड़ी लेकर आया और मुझे विश्राम के लिए अपने घर फकीर भवन अजमेर में ले गया। उसने और उसके परिवार ने बहुत सेवा की और मेरे आदेश के मुताबिक किसी भी सत्संगी को मेरे अजमेर आने की सूचना नहीं दी, क्योंकि उन्हें मालूम था कि मैं केवल विश्राम के लिए वहाँ गया था। डा० राजेश गुप्ता ने अवश्य मेरी लगातार परिचर्या की। कमजोरी तो कुछ कम हो गई थी, किन्तु फ्लू का प्रभाव और वुखार लगातार चल रहा था। दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे श्री सुमेर सिंह ने कहा, “महाराज जी! मैंने आपके आने की सूचना किसी को भी नहीं दी, किन्तु मैं आपको एक आवश्यक सूचना देना चाहता हूँ। वह यह है कि गार्गीया जी की पत्नी श्रीमती गार्गीया जी को सख्त हार्ट अटैक हो गया है और वह हस्पताल में बेहोशी की अवस्था में विशेष परिचर्याकक्ष में है।”



मुझे यह सुनकर श्रीमती सावित्री गार्गीया के प्रति दया को अनुभूति हुई। हालाँकि मैंने स्वयं सुमेर सिंह को कहा था कि मैं किसी सत्संगी को नहीं मिलूँगा और न सत्संग दूँगा, किन्तु श्रीमती सावित्री गार्गीया की बीमारी का सुनकर मुझसे रहा नहीं गया। जैसे कि मैंने कई बार आपको बताया है कि सच्चे और निःस्वार्थ प्रेम में कोई नियम नहीं होता। मैं तरन्त सुमेर सिंह जी की कार में बैठकर हस्पताल पहुँचा। श्रीमती सावित्री गार्गीया बहुत नाजुक हालत में पलंग पर लेटे हुई थीं। ज्यों ही मैं उनके निकट पहुँचा उन्होंने आँखें खोल दीं और गद्गद होकर आँखों में अश्रु बहाकर कहने लगीं, “महाराज! आपने बड़ी दया की। मैं कल से ही आपको याद कर रही थी और महसूस कर रही थी कि आप मेरे पास हैं। मुझे अभी भी विश्वास नहीं हो रहा कि क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ या आप सचमुच प्रकट हो गये हैं?” मैंने उनके सिर पर हाथ फेरा और उनको आश्वासन दिया कि वह अच्छी हो जायेगी। मालिक की मौज से वह अच्छी हो गई और दूसरे दिन घर चली गई।

मैं आपको अतीत की घटना इसलिये सुना रहा हूँ कि आप अपने प्रेम, विश्वास और विचार की ताकत को पहिचानें। आप हमेशा दाता दयाल जी के नीचे दिये गये शब्दों को न भूलें :—

‘तू दयाल है दया मूरत, तेरी दया का दान मिले।

भक्ति मिले शुभ शक्ति, सत संगत में गुरु ज्ञान मिले ॥’

इस शब्द में सद्गुरु को पूर्ण मानते हुए उससे यह प्रार्थना की गई है कि हम उसकी दया के पात्र हैं। ददेंदिल से जब उसकी दया की माँग की जाती है, तो प्रकृति में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं कि हमारी माँग की पूर्ति



अवश्य हो जाती है। जब भक्ति अगाध होती है तो शुभ शक्ति कल्याणकारी हो जाती है और अनेक प्रकार के चमत्कारी अनुभव होने लगते हैं। मझे तनिकमात्र भी श्रीमती सावित्री गार्गीया का बीमारी का ज्ञान नहीं था और न मैंने उन दिनों में राजस्थान जाने का विचार तक किया था। श्रीमती गार्गीया कई दिनों से बीमार चल रही थीं। सम्भवतया उनकी दिली पुरकार ने आचार्य के. पी. वर्मा, आचार्य शब्दानन्द, आचार्य कृष्ण मोहन, श्रीवास्तव और आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी को प्रेरणा दी कि वह मुझे उत्तर प्रदेश के दौरे को स्थगित करके अजमेर जाने की प्रेरणा दें। विचारशक्ति के सम्बन्ध में और सच्चे दिल से मालिक से अपनी मांग की पूर्ति के सम्बन्ध में पुरकार करने से और उसकी पूर्ति होने का एक और उदाहरण भी मेरे सन् 1985 में अजमेर जाने की घटना से जुड़ा हुआ है। उन दिनों राजस्थान विधान सभा के चुनाव हो रहे थे। उस चुनाव में मेरी प्रिय शिष्या डा० गिरजा व्यास उदयपुर क्षेत्र से चुनाव लड़ रही थी। मेरा राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु राष्ट्र की भलाई और देश की उन्नति के लिए सदैव सद्भावना इसलिये रहती हूँ क्योंकि भारत मेरा जन्मभूमि है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा था कि वह सन्त सन्त नहीं है, जो अपनी मातृभूमि से प्यार नहीं करता। दूसरे शब्दों में एक सच्चा सन्त और एक सच्चा साधक पूर्ण रूप से देशभक्त होता है। परम दयाल जी महाराज ने भी मानव को मानव बनने की प्रेरणा देते हुए एक सत्संग में कहा है कि हर एक सच्चा आदर्श मानव, सच्चा सन्त और सच्चा साधक देशभक्त इसलिये होना चाहिए कि जिस देश की मिट्टी से उसका शरीर बना है, उसे उसी देश से सच्चा



प्रेम करना चाहिए।

मैंने पहिले भी कहा है कि परम दयाल जी के सत्संगों की महान् सेवा के कार्यभार को संभालने से पहिले मैं समाज-सेवा और देशभक्ति में रुचि रखता था। मैंने बाल्यकाल से स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया था। सन् 1942 में महात्मा गाँधी द्वारा दिये गये अंग्रेजों को सम्बोधित करते हुए, 'भारत छोड़ो' (Quit India) आन्दोलन में मैंने सक्रिय भाग लिया था। मैं उस समय 21 वर्ष की आयु में मुल्तान शहर में (Indian Girls College) भारतीय महिला विद्यालय में आचार्य था, उस महाविद्यालय में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख और हर धर्म की लड़कियाँ तालीम पा रही थीं। मैंने नही केवल स्वयं 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लिया बल्कि चार सौ छात्राओं को भी जलूम निकाल कर इस महान् आन्दोलन में भाग लेने को प्रेरित किया था। भारत के हर हिस्से में यह आन्दोलन उग्र रूप से चला था। तिलंगाना में तो इस आन्दोलन ने ऐसा उग्र रूप धारण कर लिया कि वहाँ पर मौजवानों ने अपनी हुकूमत चला दी। सिन्ध में भी यह आन्दोलन आग की तरह फैल गया था। अंग्रेजी हुकूमत ने जगह-र पर लाठियों और गोलियों का प्रयोग करके इस आन्दोलन को दबाने की कोशिश की थी, जिसके फलस्वरूप सैकड़ों देशवासियों को मौत के घाट उतारा गया और हजारों को जेल में बन्द कर दिया गया। 2 अगस्त 1942 को ही महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, बल्लभ भाई पटेल, मौलाना आज़ाद और सभी नेताओं को नज़रबन्द कर दिया गया था। यह लार्ड वेवल का ज़माना था, जो उस समय भारत का वायसराय था। यह वायसराय कड़ेपन के लिए विख्यात था। हमारे मुल्तान शहर में भी कांग्रेस के नेताओं को जेल में बन्द कर दिया गया। मुझे



गिरफ्तार न करने का कारण यह था कि मेरे पिता जी इस आन्दोलन के विरोधी थे और बर्तानिया सरकार में वायसराय और बर्तानिया के सम्राट् जार्ज सशम (षष्ठ) तक उनकी अंग्रेजी कविताओं का आदर करते थे और उन्हें राजकवि की पदवी दे रखी थी।

इन्हीं कारणों से, हालाँकि C.I.D. पुलिस मेरे पीछे लगी रहती थी, मुझे कभी गिरफ्तार नहीं किया गया। मैं अपने पिता जी से राजनीति के सम्बन्ध में सहमत नहीं था। वह आने आपको राजभक्त कहते थे और कांग्रेस पार्टी को पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था कि जब कभी भारत स्वतन्त्र हुआ और सफेद टोपी वालों के हाथ राज्य आया, तो देश में अनुशासन नहीं रहेगा। उनका विचार था कि जब तक भारत में शिक्षा नहीं फैलती और जब तक हर एक प्रौढ़ व्यक्ति पढ़ा-लिखा नहीं होता, तब तक स्वतन्त्रता को बनाये रखना कठिन है। मेरा यह विचार था कि भारत को स्वतन्त्र अवश्य होना चाहिए, ताकि भविष्य में हम अहिंसा और सत्य पर चलते हुए हर नागरिक को आदर्श और देश-भक्त बना सकें। जब भारत का बँटवारा हुआ और हमें लंगड़ी आजादी मिली, तो मुझे एक शरणार्थी के रूप में राजस्थान में स्थापित होना पड़ा। जब मैं राजस्थान में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त होकर पंडित जवाहर लाल नेहरू को मिलने के लिए उसके निवासस्थान पर गया, तो उन्होंने मुझे कहा, “डा० शर्मा ! तुमने मुल्तान में स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया था और मुझे 1947 में स्वतन्त्रता से पहिले मिले भी थे। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे जैसे स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वाले योग्य व्यक्ति देश की



आजाद हकूमत में शामिल हों। तुम राजस्थान में राजनीति में भाग लो और निर्वाचन में विधान सभा या लोक सभा में चुनाव लड़कर आ जाओ।” मैं उनके आशय को जानता था, क्योंकि उन्होंने श्री रामनिवास मिर्धा जैसे योग्य व्यक्ति को राजस्थान की राजनीति में प्रविष्ट कराकर राजस्थान पर उपकार किया था। किन्तु मेरा रुझान राजनीति में नहीं था। मैं तो स्व० महात्मा गाँधी जी के उस विचार से प्रहमत्त था कि कांग्रेस पार्टी ने देश को आजादी दिला कर अपना मकसद पूरा कर लिया है। अब उसे राजनीति छोड़कर सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में देश की सेवा करनी चाहिए। इसलिये मैंने पंडित जवाहर लाल नेहरू के कथन का उत्तर देते हुए कहा था, “Pandit Ji! I want to serve my country culturally and educationally, through teaching and writing in India and abroad.” अर्थात् मैं देश की सांस्कृतिक और शिक्षासम्बन्धी सेवा भारत में और विदेश में लिखने और पढ़ाने के द्वारा राष्ट्र की सेवा करना चाहता हूँ।” श्री जवाहर लाल नेहरू यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और मेरी पीठ ठोकते हुए कहा, “डा० मिर्धा! मैं तुम्हारी देशभक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ।” यह सन् 1959 की बात है। इसके बाद मैं पढ़ाने का काम करता रहा और अमेरिका में भी 17 वर्ष तक भारतीय दर्शन और धर्म पढ़ाता रहा। इसी दौरान में बल्कि 1963 में ही मैं अपने परमगुरु परम दयाल जी महाराज की शरण में आ गया। इस पृष्ठभूमि के कारण मैं यह चाहता था कि यद्यपि राजनीति मैली हो चुकी है, तथापि योग्य व्यक्तियों को इसमें भाग लेकर सधार करना चाहिए।



इन्हीं कारणों से मैंने निर्वाचन से एक दिन पहिले श्री सुमेर सिंह जी के घर से डा. कुमारी गिरजा व्यास को आशीर्वाद देने के लिए टैलीफोन किया। उसने बहुत नम्रता से कहा, “गुरु जी ! मुझे आपके आशीर्वाद की सख्त जरूरत है क्योंकि मुकाबला बहुत कड़ा है। जातिवाद, अन्धबिश्वास और हमारी पार्टी ईष्या मेरे रास्ते में भारी रुकावटें हैं।” संक्षेप में मैंने डा० गिरजा व्यास को दिल से आशीर्वाद दिया, “तुम निश्चित रूप से कल निर्वाचित हो जाओगी।” मालिक की मौज से ऐसा ही हुआ। आज डा० गिरजा व्यास राजस्थान सरकार में वित्त राज्यमन्त्री के पद पर नियुक्त हैं। सन्तोष की बात यह है कि वह बहुत सच्चाई से काम कर रही हैं। उनके प्रति कोई भी शिकायत नहीं है। कारण यह है कि वह किसी प्रकार की रिश्वत नहीं लेती और सात्त्विक जीवन बिता रही हैं। मैं ममझता हूँ कि मेरा अजमेर में उन दिनों अचानक आना एक ऐसा चमत्कार था, जो यह प्रमाणित करता है कि विचार में बहुत शक्ति है।

मैं आपको दौरे के सम्बन्ध में यह बता रहा था कि रात्रि को 12 बजे हमारा हवाई जहाज सुरक्षापूर्वक बम्बई के हवाई अड्डे पर उतरा। जब मैं हवाई जहाज से उतर कर सामान के कक्ष में पहुँचा तो मैं यह देखकर हैरान रह गया कि बम्बई का कोई भी सत्संगी मेरे स्वागत के लिए मौजूद नहीं था। उसका कारण यह था कि टैलीविजन पर यह सूचना दे दी गई थी कि मौसम की खराबी के कारण कोई भी उड़ान बम्बई में नहीं उतर रही थी। जब मैं सामान-कक्ष में अपना सूटकेस उठा रहा था, तो मेरा प्यारा ओमी (निजामावाद वाला ओम प्रकाश तिवारी) वहाँ पहुँच गया।



उसने मेरे हाथ से सूटकेस छीन लिया। उसने मुझे बताया कि सभी सत्संगी हवाई अड्डे से होकर नीट गये थे। किन्तु ओमी को दृढ़ विश्वास था कि मेरा हवाई जहाज अवश्य उतरेगा। ओमी के टैलीफोन करने पर मेरा परमप्रिय रसूल आज़ाद तुरन्त अपनी कार लेकर आ गया और हमें बान्द्रा में ओमी के घर ले गया। मुझे रात्रि ओमी के घर पर बिताना पड़ी, क्योंकि उसकी योग्या माता सरला तिवारी और उसके पितामह इसी इन्तज़ार में बैठे थे कि मैं उनके घर आऊंगा। 25 और 26 जुलाई के दौरान मैंने आचार्या निर्मला पंडित द्वारा आयोजित सत्संग दिये और एक रात्रि को श्रीमती सरला भान के भी घर रह। जैसे कि मैंने पहिले बताया है कि भारी तूफान और बारिश के कारण बम्बई का सारा इलाका दुनिया से कट गया था। इसलिये 25 और 26 की सभी उड़ानें स्थगित कर दी गई थीं। किन्तु मेरा 27 प्रातःकाल 3 बजे एयर इण्डिया से देहली का रिजर्वेशन था। सौभाग्यवश वह पहिली उड़ान थी, जो बम्बई से निकली।

यह सब कुछ मौज के आधीन था कि आँधी तूफान के बावजूद भी मुझे कहीं भी न रुकना पड़ा। 27 जुलाई प्रातःकाल मैं न्यू देहली हवाई अड्डे पर पहुँच गया। भाग्यमाता जी पहिले ही जयपुर से देहली आ चुकी थीं। हमारे मैटाडोर के चालक श्री हरिवंश लाल शर्मा अपनी duty पर मौजूद थे। मुझे यहाँ पर आपको यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि हरिवंश व्यवसाय से ड्राईवर नहीं हैं। वह बिल्लारी के सम्पन्न ब्राह्मण हैं। उन्होंने जगह-र पर सत्संग के लिए मुझे ले जाने के लिए भगवान् कृष्ण वाला सारथी का काम



सम्भाला है। वह हमें सीधा आचार्य के० पी० वर्मा के घर पर ले गये। दिन भर सत्संगियों का तांता बँधा रहा। उसी रात्रि को बल्कि 28 जुलाई प्रातःकाल 3 बजकर 15 मिनट पर मैं भाग्यमाता जी और आचार्य श्री के० पी० वर्मा गल्फ एयर लाइन्स की उड़ान के द्वारा न्यू देहली से लंडन के लिए रवाना हो गये और उसी दिन प्रातःकाल हीथरो हवाई अड्डे पर पहुँच गये।

श्री किशोर गुप्ता और श्री प्रकाश चन्द चौहान अपने सुपुत्र के सहित हवाई अड्डे पर मौजूद थे। हम श्री किशोर गुप्ता के साथ बर्मिघम के लिए रवाना हो गये, क्योंकि श्री प्रकाश चन्द चौहान ने बर्मिघम आने का निश्चय कर लिया था। कुछ दिनों बाद अमेरिका जाते समय मैं श्री चौहान के घर भी गया और मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उनके परिवार के सभी सदस्य सत्संगी हैं और श्रद्धा, आस्था और प्रेम रखते हैं। मैंने एक पिछले भासिक सन्देश में बताया था कि श्री प्रकाश चन्द चौहान एक विशेष व्यक्ति हैं, जो आध्यात्मिक दृष्टि से जिज्ञासु हैं और शरणागत हैं। उनका प्रेम अगाध है और मैं उनका आदर करता हूँ। उनकी प्रबल इच्छा और आर्थिक अनुदान के कारण मानवधाम पर अप्रैल के महीने में अनामी शिव मन्दिर जिसमें परमतत्त्व परम दयाल पंडित फकीर चन्द जी महाराज की मूर्ति भी विराजमान होगी, बनवाया जायेगा और शान्ति सत्संग और गायत्री का अजपाजाप विश्वशान्ति के लिए आयोजित किया जायेगा। इस उत्सव की ठीक तिथि से आप सबको समय पर सूचित किया जायेगा ताकि सत्संगी इस शुभ अवसर पर सम्मिलित हो सकें।



इस बार इंग्लैंड में मेरा ठहरना काफी लम्बा था। जगह-२ पर सत्संगों का आयोजन किया गया था, जिनमें सबसे पहला सत्संग गीता मन्दिर में हुआ। इसके अलावा श्री किशोर गुप्ता, श्री मिलकीत सिंह, श्री बक्शी सिंह, श्री जगदीश कुप्ता के घर पर भी सत्संग आयोजित किये गये। इस बार मेरा मानचैस्टर में भी आध्यात्मिकता की दृष्टि से विशेष दौरा हुआ। डा० और श्रीमती खुराना ने अपने घर पर दो साधना-शिविर शुरू किये। पहला शिविर भारतीय इंग्लैंड निवासियों के लिए और दूसरा शिविर मुख्यतः अंग्रेजों के लिए आयोजित हुआ। बर्मिंघम से श्री किशोर गुप्ता और कुछ दूसरे सत्संगियों ने भी दूसरे साधना-शिविर में भाग लिया। इन दोनों अवसरों पर मैंने पहिले यह बतलाया कि सन्तुलित जीवन व्यतीत करने के लिए समाधि का क्या महत्त्व है और बाद में उन्होंने 'सुरत-शब्द योग' के अभ्यास करने की विधि बताई। अन्त में सभी सम्मिलित होने वाले सत्संगियों ने सुमिरन, ध्यान और भजन में बैठकर शान्ति का अनुभव किया।

हमेशा की भाँति अमेरिका जाने से एक दिन पहिले मैं लंडन में रहा, जहाँ पर एक सत्संग तन्जानिया के श्री दिलजीत पंडित के सुपुत्र श्री राजीव पंडित के घर आयोजित हुआ और दूसरा सत्संग सैला के श्री गुरुमीत सिंह की सुपुत्री के घर पर हंसलो में आयोजित हुआ। श्री गुरुमीत सिंह हमारे स्वर्गीय ट्रस्टी पूरन चन्द के सुपुत्र हैं। हंसलो के सत्संग पर सत्संगियों की संख्या बहुत अधिक थी। इस सत्संग के बाद हम रात्रि के विश्राम के लिए श्री वर्मा और उनकी पत्नी श्रीमती शशि वर्मा के घर पर गये। यह दोनों पति-



पत्नी सत्संगी हैं और रूहानियत का रत्नान रखते हैं ।

हम 14 अगस्त प्रातःकाल हीथरो एयर पोर्ट से T.W.A. की उड़ान के द्वारा रवाना होकर उमी दिन करीब 11 बजे प्रातःकाल न्यूयार्क पहुँच गये । इस द्वार श्री जौन कर्टन, उनकी योग्या पत्नी सूजन कर्टन और उनका प्यारा सुपुत्र मंगलम् न्यूयार्क के हवाई अड्डे पर हमें लेने के लिए आये थे । हम T.W.A. के विशेष टर्मिनल पर पहुँचे थे । क्योंकि श्री कर्टन पहिले कभी न्यूयार्क हवाई अड्डे पर नहीं आये थे इसलिये उन्हें हमें ढूँढने में कुछ समय लगा ।

इस विदेशी सत्संग-दौरे के सम्बन्ध में इस मासिक सन्देश में इतनी ही सूचना दी जा सकती है । अगले सन्देश में सम्भवतया मैं सन्तमत की दृष्टि से कर्म की व्याख्या जारी रखूँगा ।

मैं आप सबको इस महीने की सद्भावना देता हूँ और सच्चे दिल से आशीर्वाद देता हूँ कि आप सब फलें, फूलें और आपका लोक और परलोक बन जायें ।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव



महत्त्वपूर्ण सूचना

सत्संगी जन को यह जानकर हर्ष होगा कि परम पुरुष पूर्णधनी दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन जी महाराज का 130वाँ जन्मोत्सव इस वर्ष 23 फरवरी 1990 को राधास्वामी धाम, गोपीगंज, जिला जालपुर (उ. प्र.) में बड़ी धूम-धाम के साथ अति विशाल रूप में मनाया जायेगा। इस शुभ अवसर पर पूर्णधनी परमसन्त सद्गुरु मानव दयाल डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज (आध्यात्मिक उत्तराधिकारी परमसन्त परम दयाल पं. फकीर चन्द जा महाराज) की अध्यक्षता में आयोजित सन्त सम्मेलन में सत्संग वचनामृत वर्षा होगी तथा मानवता मन्दिर, होशिया पुर, पंजाब की ओर से भण्डारा होगा। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि दाता दयाल जी महाराज के जन्म वर्ष 1860 में भी महाशिवरात्रि 23 फरवरी को ही थी, उनके महासमाधि वर्ष 1939 में भी 23 फरवरी को ही महाशिवरात्रि थी और इस वर्ष भी महाशिव रात्रि 23 फरवरी को ही है।

इस महापुनीत शुभ आयोजन में सभी सत्संगी व मानवताप्रेमी गण सादर सप्रेम आमन्त्रित हैं।

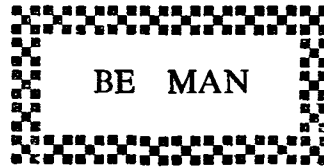
जनरल सेक्रेटरी



Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural
and Spiritual Welfare and Uplift of
Mankind all over the World.



December 10th, 1989.

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur, (Pb.) India.



All these stages have been classified under :

'Hath-Yog', the union of individual-Physicality with the Universal-Physicality

'Pran-Yog', the union of individual-breath with the Universal-Breath ;

'Mansic-Yog', the union of individual-Mind with the Universal-Mind ;

'Vijnan-Yog', the union of individual-Intellect with the Universal-Intellect ;

'Anand-Yog', the union of individual Blissful or Happy condition with the Universal Blissful or Happy condition.

These systems of Yog are based on the five sheaths engulfing the Spirit-entity.

(Vide frontis-piece)

In the Radhaswami system of Yog-practice, the devotee begins his practice from the center of Happiness (Anand-mai Kosh), leaving aside the consideration of other centres, the union with which centres is not of very much importance, as their practice is hazardous, risky and often injurious, resulting in the derangement of mind.

The practice of Anand-Yog is easy, simple, practicably practical, and can be performed by young and old, men and women, adults and boys, and all, not only without any risk to themselves but also with superior advantages. Mentality, Intellectuality, Physi-



cality, all get enhanced and the whole system i.e. the composite human body (being composed of three bodies) gets very beautifully toned up and sublimated and subtilized. It is also innocent and innocuous as it is practised with happy mood of mind in the very centre of Happiness (Anand-mai Kosh). The practice does not appear hard, and it very easily results into Spiritual up-lift or rather the elevation of the Spirit into the regions beyond that of Anand-mai Kosh which is the border-land of the Matter and the Spirit regions.

The process is explained at length in the body of the book.

II

Every sort of accomplishment requires a particular kind of qualification, and the system of Yog too, is not exempt from this principle. Those who have such inherent inclinations, in-born tendencies, and innate qualifications in them, they only are regarded as deserving the training. In the technicality of Yog School, such aspirants are called 'Adhikaries'. Properly speaking, only such qualified personalities are entitled to practise YOG which is of various kinds viz., Physical-Yog, Subtle-Yog etc., as has been detailed in the frontispiece of this compendium. Some of them are very hard to attain ; but the Anand-Yog is an exception. Any and every man that is willing



to undergo the training can, aspire to acquire its theoretical and practical knowledge through the grace of an adept preceptor without any risk of whatsoever nature either to his body, mind, or brain. The incidental dangers arising from other systems, have nothing to do with this. Nevertheless, the public propaganda through lectures and discourses is strictly prohibited. The competency of the pupil is a matter which should be determined by the Guru himself. He only knows how to stimulate the Yogic impulses by reason of the antecedent discipline required of the disciples. The aspirant however, must be intelligent. His attitude of mind should be essentially possessed of religious devotion, inspired by a desire for union which leads to perfect liberation. His other qualifications are the control of senses, abstinence from injury to all beings, mindful of doing good to the animate, purity of mind, faith and refuge in the Grace of the Supreme Father, Sat-Purush Radhaswami. He must avoid religious disputes, as every religious dispute is based on bigotry which is the mark of a narrow mind.

The attainment of Anand-Yog, undoubtedly, leads to the Blissful state of mind, for it is performed in the Anand-mai Kosh (Sheath of Bliss). The practice begins at the Ajana-chakra, which is situated betwixt the two eye-brows (in the entrance to Sukshma sharir or subtle body). Speaking of the "Blissful



state of Mind” we have to say here that there are various sorts of pleasures : physical, mental, intellectual and so on. The brutes have their happiness confined to the physicality and the physical, bodily, or outward pleasures. Man in this state is skin to the brute. A mental or intellectual man’s happiness is different from that of the bruteman. He is of a thinking mood of mind and he gets pleasure in thought, philosophy, ethics etc. The ‘Anand-Yogi’ is different from these. His happiness is Spiritual, the result of his concentration on the higher centres. The consciousness of this Spiritual happiness leads him farther and farther into the higher Spiritual regions and in the end he gets himself absorbed in the last stage which is ‘Moksh’ (liberation). Spiritual up-lift or Spiritual elevation begins from ‘Ajaachakra’ a necessary and detailed account of which will be found in the body of this treatise.

III

The individual Selves (‘Jeev’ are enclosed within and confined in the three regions : ‘Para-Brahmand’, ‘Brahmand’, and ‘Jevand’ i.e. the ‘Pind’ or body. Likewise, the man is encased within and confined in three bodies : causal, mental and gross, technically called ‘Karana, Sukshma, and Sthula, Sharirs.’ In a similar way, he finds himself bound with the letter of the three-conditional consciousness called wakefulness, dreaminess and dreamlessness, known among



the mass of people as 'Jagrat, Swapha, Sushupti Avasthas'.

As is the creature, so is the God. God is nothing but the binding-principle in Nature, whom the people of Radhaswami Faith, call "Kal" or "Maha-Kal". He is the Supreme Deity of all the so-called religions of the world. Bound as he is, he binds all. The idea of bondage comes from him and his 'Ahankar'. He is the ruler of the Universe and as long as the individual Self finds himself inhabiting His realm, he cannot dream of release from the fetters of the above conditions. It is His will that they (individual Selves) should remain bound.

Beyond these is the unconditional state of freedom which is technically termed 'Turiya-avastha (Fourth condition) Chautha pad' according to the Radhaswami Faith.

Radhaswami Faith lays much stress on the attainment of this unconditioned-condition of which few of these bound or fettered ones have any glimpse or reflection whatever. This is The Real ; and the Supreme Ruler of this has been termed Radhaswami Dayal. It is why some devout souls pray, in human language, without knowing the purport of their prayer :—

"Our Father, which art in Heaven,
Hallowed be Thy Name,



Thy Kingdom come on Earth,
As it is in Heaven." etc. etc.

This prayer clearly shows that he who invented it, was to certain extent, conscious of the Reality, though he failed to bring to human mind the Truth inculcated by him.

The three-conditional realms in Nature are only reflectionary images of the real one. This Kingdom is the Kingdom of Matter in its causal, subtle and gross form. The Real One is beyond these. It is, properly speaking, the Spirit-land where the Spirit rules Supreme. It is its undisputed kingdom bereft of Trinity, Duality, and Unity even. For, these are the various aspects of manifestation in Matter. The praying devotee aspires with the inspired idea of bringing down that unconditioned-condition, on this conditioned plans of existence, the mortal abode of the immortal souls. The devotee all the while repeats the formula of the unexplained and ambiguous, though not wrong, assertion of Unity-in-Trinity and Trinity-in-Unity, without fixing or concentrating his attention on The Real Divinity within himself, and without gaining entrance into the Kingdom of God, that lies within his own Self.

Cause and effect have their origin in the Causeless One. How this Causeless One affects or tends to become the cause and effect, is a Universal Riddle which is solved by the practice of the 'Anand-Yog' i.e. Union through Bliss.

(To be continued)



A Satsang on Spiritual Initiation

by

Param Sant Param Dayal

Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

(Continuation of Last Month's Satsang)

Pandit Ji ! When you attend some of my discourses, then I shall tell you the method of Samadhi, the inward practice. You are grown up man, so you need not start from the first stage of A,B,C. You should try to concentrate at the stage of Light within. But as our mind is never still some Word or Mantra is given for meditation. Speak that Mantra silently while meditating and attend the satsangs of the Sad-guru. You will gradually be uplifted. His Holiness Data Dayal Ji Maharaj while initiating me gave me the spoken word 'Radhaswami'. Pandit Ji, "If you have no objection to this spoken word 'Radhaswami', you should meditate on this Mantra. As far as the real Radhaswami Nam is concerned, its abode is at the fourth stage (Chautha Pad). This is the highest stage of inward practice, where our Surat (self) while listening to the inner sound or Shabda, reaches a



stage where there is no Sound. This stage, in fact, the Real Nam. But to concentrate your mind, you need some spoken word.

Pandit Ji ! I have spoken the truth and revealed the secret to you. Now, even if you are not initiated by me and do not like the Mantra Radhaswami and are interested in Gyatri Mantra, then start inward practice with Gyatri Mantra. You will surely reach the stage of Light within. You shall be able to reach your destination and attain your mission of life. But always be aware of your ego which will try to dominate you. Be honest and pure of mind.

His Holiness Data Dayal Ji Maharaj was very honest and most liberal in his thinking. Once Shri Mukhtiar Sahib one of the disciples of Data Dayal Ji Maharaj met me in Gorkhpur. He told me that Data had him "I am the preceptor of Radhaswami Mat and honour and follow this path. But you are free. It is not necessary for you to follow Radhaswami Faith. You may follow any path. The purpose of all the paths to make a man see the Light within. People unnecessarily fight for the word-spoken. They are all ignorant and far away from the Reality.

Data Dayal Ji Maharaj was very kind to me. He tried to make me aware of the Reality. But at that time I was not able to understand the Reality. Now with the grace of Data and my satsangs to the satsangees have enlightened me, revealed the Truth



to me. When people see my form and that form of mine does help them in solving their problems, when actually I don't go anywhere, I am convinced of the fact that whatever manifests to you in your waking consciousness, in your dream, or in your inner practice is all the creation of your own mind. You create your own world according to your imagination and suffer and enjoy accordingly. I too used to create the word of my own imagination and was most happy, singing songs of devotion, sometime I was sad and wept in pangs of separation from my Guru. What was all that? It was entirely the creation of my own mind.

The men of religious world have always tried to conceal the Truth. Sant Kabir has also maintained the iron curtain and advised his disciple Dharam Das to keep that secret confined to him only. His Holiness Radhaswami Dayal also did not reveal the secret perhaps the secret. May be it was right at that time. I have tried to lift this curtain. Why did I opened the secret? I opened the secret because I want that you innocent people should not be exploited any longer, people are under the wrong impression that a particular Guru comes at the time of death of the disciple to accompany him. The present big religious centers of many so-called Gurus are flourishing on account of this faith that if you adopt a Guru, he will take you to heaven after your



death. I give you an example of my own life. My first wife was seriously ill. She told all the members of the family that she would breath her last after two days. My brother Ram Narayan was reading Ramayana, as requested by her. Fifteen before her death, she told Ram Narayan to stop reading Ramayana and spoke, "See, Lord Rama has come just now along with queet Sita to take me to heaven, so I am leaving." She said 'Ram' 'Ram' and breathed her last. Lord Rama came to accompany the soul of my wife. Now at present when some satsangee is about to leave his or her body, the form of Baba Sawan Singh or some other Guru comes to accompany him. Those who love me they create my form at the time of distress and their problem are solved. Many devotees of mine told before their death that I come an aeroplane to take them to their final Abode. I received a letter from Shri Tulsi Ram of Itarsi about two months ago. He wrote, "Maharaj Ji ! my father has expired. But three hours before his death he cried and said look ! Baba has come in an aeroplane Aeroplane number is 35610." I tell you honestly that I did not go to him, nor did I know that he was dying.

In such instances it is quite clear that the innocent people are being explorted by the so-called Gurus, who give them the idea that they will come



to help the disciples at the time of their death. Oh my innocent satsangees most of the Temples, Gurudwaras, Ashrams and Deras are built with your hard earnings, they flourish because of your ignorance. I have opened the secret to you that nobody comes to help you from outside. Everything is within you, you are the Master of your own destiny.

I am not against donations. I firmly believe that if you do not give money in donation, you will never be prosperous. If you want to help the poor or for a cause do donate liberally. If you give you money will be rewarded with money. If you do not give in charity how can you be rewarded with money. But be aware of false Gurus. When some Guru initiates you and tells you to offer one tenth of your income to Guru every month or every year, don't trust him. Your family needs come first.

Pandit Ji you have come for Nam Dan (initiation) Dharam Das had also gone to Saint Kabir for Nam Dan. This Nam Dan is only for those, who have no attachment with the world and who want to go back to their permannet Abode.

I do not initiate anybody, behind a curtain or closed door like so many Gurus who exploit people. The word I speak is Nam Dan. Pandit Ji nature has brought you here. I have explained to you how to practice inwarding. If you catch hold of my feet, you will not be redeemed. The real Feet of the



Guru is Light within you. So try to dwell at the stage of Light within. The Gyatri Mantra also directs the initiate to concentrate at this center of Light within. I suggest 'Radhaswami' for you. But I want to make it quite clear that I do not want to shaken anybody from his traditional path. But always remember that the real Nam is Light and Sound. In other words, it is known as Par-brahm and Shabda Brahm.

I had just told you that to gain spirituality you have to detach yourself from worldly things or renounce worldly comforts. Now the question arises what is that thing which you have to renounce in the world. Have you to renounce your married life, your household or your duty. No ! No !! No !!! you have not to renounce or leave your family, your duty or the world. You have to leave or renounce all the negative thoughts which stand in the way of your spiritual progress. But the negative or constant bad thoughts would stop only when your Surat (self) is attached to Light and atuned to Sound or Shabda only within. The object of the Holy Gyatri Mantra is the same. The sacred Garur-Puran also refers to this sublime Truth that until a seeker crosses the stages of Par-Brahm and Shabda-Brahm, he cannot attain liberation from the cycle of transmigration. The image of reflection of Brahm and the Shabda-Brahm permeates in you. So as desired you should

BEYOND SECTARIANISM

by

H. H. Hazur Manav Dayal
Dr. I. C, Sharma Ji Maharaj

R. Baine Harris

Distinguished Professor of Philosophy
Old Dominion University
Norfolk, Virginia, U.S.A.

[A very dear and precious American friend and colleague of H. H. Manav Dayal Ji Maharaj, who had the opportunity to meet Faqir Baba].

One of the major hindrances to the recognition of the unity of religions of the world is our widespread and very human tendency to be sectarianists. Sectarianism usually has a religious connotation, but it can be found in all areas of human intellectual life. It occurs in art, in philosophy, in economics, in military strategy, in educational theory, in psychological practices, in medicine, and in some other areas as well as in religion whenever a sectarian position is absolutized. It occurs in art whenever one particular art form is proclaimed as the only really





important form or when one particular style is declared to be the only worthy style. It occurs in philosophy when one school of thought or way of philosophical thinking is projected as the only respectable form. It occurs in economics when one theory only is advocated and in military affairs when only one strategy or tactic is considered to be viable. It occurs in education when only one theory of learning or only one value system is accepted and in medicine when only one diagnosis is made. It occurs in religion when one formulation of a religion is projected as the sole answer for the needs of all mankind.

Distinction should be made between the terms "sectarian" and "sectarianism", and between being a sectarian and being a sectarianist. We take sectarianism to mean the advocacy of some sectarian position as a complete and final position and as the only one worthy of consideration. A sectarianist is any one who asserts that some one sectarian position must take priority over all other positions.

Religious sectarianism is the most widespread of all forms and has occurred in some form or fashion in the development and expansion of virtually every religion and nation on earth. In certain centuries of recent history it has been the rule rather than the exception. Since it is still a significant factor in contemporary culture and in the political, cultural and



economic relations between the nations of the world, it is important that we recognize its existence and understand and deal with it whenever and wherever it occurs. There can be no hope for seeing the unity that already does exist among the religions of the world until we are able to get beyond our own sectarianism,

What is religious sectarianism and why does it occur? Essentially, it is a mental attitude, the tendency to proclaim one given specific historical cultural intellectual formulation of a religion to be superior to all other intellectual formulations of that religion and the basis upon which all the other formulations of it or of other religions are to be judged. Although it may have political, economic, cultural and even ethnic factors involved in it, I see it as primarily a philosophical issue. I see it as a certain way of being philosophical about religious issues, a way that is not in keeping with the spirit of philosophy and one that does not properly represent mature philosophical thinking and the nature of the philosophical quest.

Perhaps a more analytical treatment of some possible interrelations between philosophy and religion would be helpful in understanding the nature of religious sectarianism and the way it develops. If we were to think in terms of issues alone we might



say that there are some purely philosophical issues that have no significant involvement with religion and some purely religious issues that have no significant involvement with philosophy. Generally speaking, philosophical issues are purely intellectual issues that pertain to the way the world and all the things in it are to be conceptualized and how all the things we judge to be real are to be related systematically to each other ; whereas religious issues deal with the practical aspects of human relations and with ultimate meaning in human life. There are, of course, some few philosophical issues that focus upon religious meanings and some religious issues that involve philosophy, issues such as the origin and nature of the universe and the origin and nature of man.

If we were to think of both issues and solutions to issues, we might say that there are philosophical issues and religious issues and philosophical solutions and religious solutions. There, then, would be four possible cases, namely, (1) philosophical solutions to philosophical issues and (2) religious solutions to religious issues as well as (3) religious solutions to philosophical issues and (4) philosophical solutions to religious issues. The first can refer to "pure philosophy," the second to "pure religion," the third to organized religion, and the fourth to "intellectualized religion," the area where sects and sectarianism usually occur.



PURE PHILOSOPHY. Philosophy as it is usually practiced is only an attempt to find philosophical solutions to the various philosophical questions about the nature of the universe and all things in it that arise from an intensive and thorough form of intellectual inquiry and analysis. This it does by producing specific answers or solutions to specific philosophical questions and relating them to each other in some unified and systematic way. It does not attempt to deal directly with life or the issues of life. Its only function is definition and intellectual organization. Although it gathers its information from all the arts and sciences and from a variety of forms of human experiences, it does not derive its method or principle of organization from any of its sources. Its purity rests in the fact that it governs its method of inquiry and is able to devise its own solutions to its own questions.

PURE RELIGION. Pure religion, on the other hand, as distinguished from philosophy and organized religion, is simply the effort to be purely religious. It is religion for the sake of religion and not for any other reason. It is a response to the issues of human life in a way that gives some ultimate meaning to human efforts and actions. It is a way of responding to injustice, human cruelty, illness, spiritual disorientation, and the fact of death. It is an attempt to provide a religious solution through self-giving and personal sacrifice in meeting the needs of mankind, and especially the needs of the dispossessed. A very religious person, such as Albert Schweitzer or Mother Theresa sees the injustices



of life as religious issues and responds directly to them without consideration for their social, historical, cultural or philosophical aspects. This is the way it has been in the lives of thousands, if not millions, of religious people throughout history.

RELIGIOUS TRADITIONS. Neither philosophy nor religion seem to be able to remain always pure and completely separate from each other. There are numerous historical instances of attempts to mix them together or to establish the one on the basis of the other. It is inevitable that they will become involved with each other sooner or later as religions become more intellectualized and as philosophies broaden the range of the phenomena with which they are concerned. Whenever religion is verbalized and formalized, philosophy must be involved in it to some extent, for religious meanings cannot be discussed without an appeal to certain philosophical concepts that have a metaphysical import. In like manner, philosophy in its own development must consider the various claims about the nature of man, the nature of the universe, and the various forces at work in it that are made by the various religions. For its own sake it cannot afford to ignore the claims religions make about the nature of reality any more than it can ignore the claims about the same made by the arts and the sciences.

Religions over a long period of time tend to develop religious traditions, which means that they tend to define themselves more precisely by settling on more



specific philosophical positions in reference to their various teachings. They rely increasingly upon specific historical philosophical concepts and formulations as a way of making their teachings more understandable. Eventually, they begin to see that the intellectual issues raised by the philosophers are basic questions that are important to all mankind and they begin to assume some responsibility in responding to them. Their own expressions of faith, their creeds, their doctrines and their prescriptions for social action are their way of providing a religious solution to philosophical issues. As a rule they do not attempt to provide philosophical responses to philosophical issues, although some philosophical theologians among them may occasionally do so. Usually, however, religions do not attempt to solve philosophical issues but rather suggest religious solutions for them. Organized religion is an attempt to respond to the questions of philosophy with religious solutions.

PHILOSOPHICAL RELIGION. Although religious organizations as a rule do not usually attempt to formulate philosophical solutions to either philosophical or religious issues, various individuals within them at various times and in various settings have done so. In Christianity, for example, such men as Origen, Augustine, Thomas Aquinas, Luther, and Calvin are prime instances of attempts to do just this,



and in so doing they became sectarians. They devised a philosophical perspective with which religious issues that have an intellectual or ideological aspect could be discussed and further suggested a certain philosophical formulation of these issues. Exactly the same sort of thing has also appeared numerous times within Hinduism, Buddhism, and Islam. This is a very normal and natural function and is a very likely occurrence among religious persons who have strong philosophical interests and abilities. It is almost inevitable that anyone who is seriously interested in both religion and philosophy, will attempt to work out some philosophical response to the issues and concerns of religion.

(To be continued)



Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My Dearest Satsangis,

Radhaswami and Blessings of the Supreme
Compassionate Lord,

In the last monthly message I had given you information about the tour programme upto the afternoon of the 1st July 1989. I had to fly from Jaipur to Bombay in the same evening around 6 o'clock. When we arrived at the Airport, we came to know that our flight had been delayed for three hours. The reason was that this flight had to go from Bombay to New Delhi on its routine and to return to Bombay the same evening via Jaipur. Due to strong and heavy rain in Bombay the flight never originated from that Airport. As a result an alternate flight was arranged for Bombay via Jaipur three hours late. The Indian Airline had made the announcement at Jaipur Airport that this flight would end in Ahmedabad on account of bad weather condition.



I preferred to take the risk and catch that flight hoping that it might get clearance from Bombay Airport or Ahmedabad. When our air-craft was in air, the air-hostesses were not sure that our flight would ever get clearance for Bombay.

Our air-craft landed safely at Ahmedabad where we waited for two hours. The messages received from Bombay pointed out that weather conditions were extremely bad and Bombay had been isolated from the world due to heavy flood and storm. In spite of that, I told a stewardess that we would certainly be flying to Bombay. Within a few minutes after I made this statement, our pilot received the clearance and we took off to Bombay. Even though we were to wait for half an hour to land and had to remain hovering in the air, yet we did land safely on the wet run way of the Bombay Airport.

I have stated all this to remind you that the power of thought is very great. It was due to the keen desire of the satsangis in Bombay that despite extremely bad weather our flight landed safely at the airport. Due to their thought-power and deep faith the nature created such circumstances that our flight was the first and the last to land in Bombay. As a matter of fact, my dearest satsangis, under the influence of your true love, faith and conviction, I am compelled to come to you for delivering satsang.



If due to some unavoidable circumstances I cannot reach you, you should not think it otherwise. Even if I have to miss you sometimes, this missing has some hidden benefit. Let me give you a practical example of my experience in this context.

In 1985 I had to cancel my Satsang tour in U.P. because I was seriously ill. Ach. K. P. Varma, Ach. Shabdanand, Ach. K. M. Srivastava and Ach. K. M. Tiwari concurrently decided that I should cancel my tour and go to some isolated place for rest and treatment. Consequently I flew from Lucknow to Jaipur via Delhi. I was so weak physically that I was not able to walk down the steps from the aircraft to the ground at Jaipur Airport. My dear Arjun Lal Chhapparwal came to the airport and conveyed to his home in his own car comfortably. Next day my very dear spiritual son Mr. Sumer Singh took me to Ajmer in his car, to his residence "Faqir Bhawan." He and his whole family served me day and night, and didn't inform any satsangi about my arrival in Ajmer so that I may have complete rest at his residence. Of course, my dear Rajesh Gupta continued to treat me during my stay in Ajmer. I felt a little better, but fever continued to bother me due to serious flu. Next morning Mr. Sumer Singh said to me, "Your Holiness, I have not informed any one about your arrival in Ajmer. However, I want to give you an important information. Mrs. Savitri



Gargia, the wife of Mr. Gargia, has suffered from a heavy heart-attack and is in unconscious state in the Critical Ward of the General Hospital.”

The moment I heard this, I felt great sympathy for Mrs. Savitri Gargsa. I requested Mr. Sumer Singh to take me immediately to her, even though I was not meeting any satsangi during my treatment. I have already told you on many occasions that in the case of true and selfless love, all the rules and regulations are thrown to wind. Consequently I reached the hospital in Mr. Sumer Singh's car. Mrs. Gargia was lying in bed with her eyes closed. The moment I approached her, she opened her eyes and tears of joy filled her eyes. She said to me, “My dear Maharaj Ji, you have taken great mercy on me. Since yesterday I have been thinking of you and have been feeling that you are present in this room. I cannot yet believe whether I am dreaming, or your appearance is real and material.” I put my hand on her head and consoled her by saying that she would be soon in normal health. By the Grace of God she became healthy and was released from the hospital the next day.

I want to relate to you another event in this context because I want to emphasize that due to your faith and power of mind many miraculous events take place. I want you to remember the following words



of Data Dayal Ji Maharaj :

You are the Embodiment of Compassion, O Lord !
 We seek only the gift of Your Compassion ;
 We seek auspicious power which should make us prod ;
 We seek true knowledge and deepest devotion.'

In this verse the Supreme Master and Preceptor has been beseeched and prayed with full faith that He is the Supreme Lord in the human form. Whenever one sincerely demands His Compassion, Nature creates such circumstances that fulfill one's demand. When the devotion is deep, auspicious power becomes beneficial and many miraculous events take place. I had not even the least idea about the illness of Mrs. Savitri Gargia, nor had I thought of visiting Rajasthan in those days. Mrs. Gargia had been ill for many days. Possibly her sincere prayers had compelled Ach. K. P. Varma, Ach. Shabdanand, Ach. K. M. Srivastava and Ach. K. M. Tiwari to advise me to cancel my tour of U.P. and to go to Ajmer for rest. As I have already told you, I want to mention another event related with this tour which proves the efficacy of sincerity, devotion and selfless love, and which proves that every sincere demand is fulfilled.

This event is also connected with my visit to Ajmer in 1985. There were the electioneering days for Rajasthan Assembly. One of my dearest pupils Dr. Miss Girija Vyas was contesting for the Rajasthan Assembly seat from Udaipur constituency.



I do not have anything to do with politics at the present time because my field is spiritual and above all political and social ups and downs in our country. However, I always have concern for the well-being of the country because India is my birth place. Swami Ram Tirtha, a great saint of our time, has stated that a saint is not a true saint if he is not patriotic. In other words, a true saint and a true devotee must necessarily be full of love for his native country. Param Dayal Ji Maharaj also, while exhorting man to be human, had stated in one discourse that every person, in order to be ideal human being, an ideal devotee must necessarily love his native land because his physical body is constituted by his native soil. It is, therefore, necessary that every individual must be filled with patriotic love.

I have already stated that I had interest in social service and service to my native land before I took over charge of performing my duty of delivering satsang under the orders of my Supreme Master. I had also participated in the non-violent movement for the attainment of India's independence. In 1942 I had taken active part in the "Quit-India" movement started by beloved father of the Nation—Mahatma Gandhi. At that time I was twenty-one years of age, and was working as the Principal of the Indian Girls College in Multan (Punjab). The girl students of all religions and communities—Hindu, Muslim,

participated in the Indian struggle for freedom, should also share the administration of the Independent India. You had better take interest in the politics of Rajasthan and get yourself elected either in Assembly or in the Parliament." I understood his good intention. I also knew that he had inspired Mr. Ram Niwas Mirdha of Rajasthan to join in politics as a result of which Rajasthan underwent social and economic development. But I had no inclination to join active politics. I agreed with the idea of Mahatma Gandhi who had said that the Congress had accomplished its mission of India's independence. He had suggested that the Congress should be dissolved and the Congress members should give up politics and resort to the service of the country in social and cultural areas. Consequently, while responding to the suggestion of Pt. Jawahar Lal Nehru given above, I replied to him with all humility, "Respected Pandit Ji, I want to serve my country culturally and educationally through writing and teaching both in India and abroad." Pt Nehru was very much pleased on hearing this. He patted me at the back and said, "Dr. Sharma, I am extremely impressed by your patriotic ideals." This happened in 1959. After that I busied myself in teaching and writing. I taught





Indian Philosophy and Religions in U.S.A. for about seventeen years. During this period I came in contact with my Supreme Master Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chand Ji Maharaj in 1963 and surrendered myself to Him. On account of this back ground, I have always desired that, in spite of the fact that politics is dirty, worthy intellectuals should join it and bring about reformation.

On account of these reasons I telephoned Dr. Miss Girija Vyas from the house of Mr. Sumar Singh a day before the polling. At that time she was in Udaipur. I gave her blessings and wished her victory. She said to me with great humility, "My great teacher, I am in dire need of your blessings because the fight is neck-to-neck. Castim, blind faith and even jealousy in our own party are great obstacles in my way." To be brief, I sincerely blessed Girija Vyas and said to her, "Victory will be definitely yours in the election tomorrow." And by the Grace of God this came out to be true. Today Miss Girijya Vyas occupies the position of Minister of States for Finance and Tourism. It is a matter of great satisfaction that she is discharging her duties most honestly. As a result of this she is respec



by the public as well as by the administration. This event and my presence in Ajmer during her election again prove that your power of thought can work miracles.

Coming back to the tour, when I came out of the Terminal in Bombay, I did not find any body to receive me. However, my dear Omi (Om Parkash Tiwari) of Nizamabad was present in the Baggage Section of the Airport. It was a great pleasure to meet him. Though this boy is hardly in his teens, yet I can say that he is very saintly. I will give you information in this context later on. The reason that no one else was present on the Airport was that it had been announced on the Television that no flight would land at Bombay Airport due to serious weather condition. It was really a miracle that our flight was the first and the last to land in Bombay on that day. When dear Omi contacted my dear Rasool Azad on telephone, he immediately came in his car and took us to Omi's residence. I spent a night at Omi's house because his worthy mother Sarala Tiwari expected me to be at their residence at least for a day. I spent 25th and 26th July delivering sat-sangs organized by Ach. Nirmala Pandit and also



stayed with Mrs. Sarala Bhan for one night. On the 27th morning I arrived in Delhi by the first Air India Flight. Mata Ji had already come from Jaipur to Delhi. The satsangis continued to pour in and meet me at the residence of Ach. K. P. Varma. Myself, Mata Ji and Sri K. P. Varma flew from New Delhi to London by Gulf Air Lines early morning on the 28th July and arrived in London around 8 A.M. the same day.

Mr. K. K. Gupta and Mr. P. C. Chauhan were present at the Airport. We proceeded to Birmingham with Mr. K. K. Gupta because Mr. Chauhan promised to meet me in Birmingham. Later on I also visited Mr. Chauhan and his family, and found that all the members of his family have great regard and love for me. I have already mentioned in my previous monthly message that Mr. P. C. Chauhan is a very spiritual soul. He has fully surrendered himself and has a great conviction that his spiritual upliftment is completely in the hands of the Sat Guru. His love is very deep and I honour that attitude of his. Due to his insistance and his liberal financial aid we are going to organize a function in Manav Dham in the month of April in which an Anami



Temple of Shiva along with the sculpture of Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chaud Ji Maharaj would be inaugurated and Shanti Satsang as well as Gayatri meditation for World Peace would be organized. The date of this event would be announced in time for the satsangis to participate.

My stay in England this time was quite long. The satsangs organized in the Gita Mandir, at the residences of Mr. K. K. Gupta, Mr. Milkit Singh, Mr. Buxi Singh and Mr. J. C. Gupta were very well received. This time my visit to Manchester was also witnessed by two meditation work-shops, at the residence of Dr. and Mrs. K. M. Khurana, Mr. K. K. Gupta and a few others from Birmingham also attended the second work-shop which was mainly meant for the English people. During these work shops I first explained the purpose of meditation for leading a balanced life and later gave the practical demonstration of Surat-Shabda Yoga, or the Yoga of Sound and Light. Finally all the participants went into meditation and experienced peace of mind.

As usual I spent one night in London taerf giving two satsangs, one at reside the encof



Mr. Rajiv Pandit the worthy son of the worthy Dil Jit Pandit of Tanzania and at the residence of the grand-daughter of our late trusty Mr. Puran Chand in Hunslow area. After the satsang in Hunslow, which was very largely attended, we went to spend night with Mr. Varma and his wife Shashi Varma who happened to be related to Mata Ji. Both these persons are real satsangis and spiritually inclined in Nature.

We flew from London Airport in the morning of the 14th August 1989 and arrived in New York the same morning. This time Mr. John Curtin and his worthy wife Suzan Curtin along with their affectionate son Mangalam, had come to receive us at the Airport. We had arrived at the special TWA Terminal. Since the Curtins had never come to New York before, it took them some time to locate us.

This much information about the foreign tour seems to be sufficient for the time being. As such in my next monthly message I would like to throw some light on the nature of Karma from the point of view of Sant Mat, as I promised to do in my

last monthly message. In the mean time I send you my best wishes and blessings for this month and sincerely desire that your spiritual and secular life be blissful and happy.

Blessings of Supreme Being.

Yours in the Supreme Being

Manav.

